Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

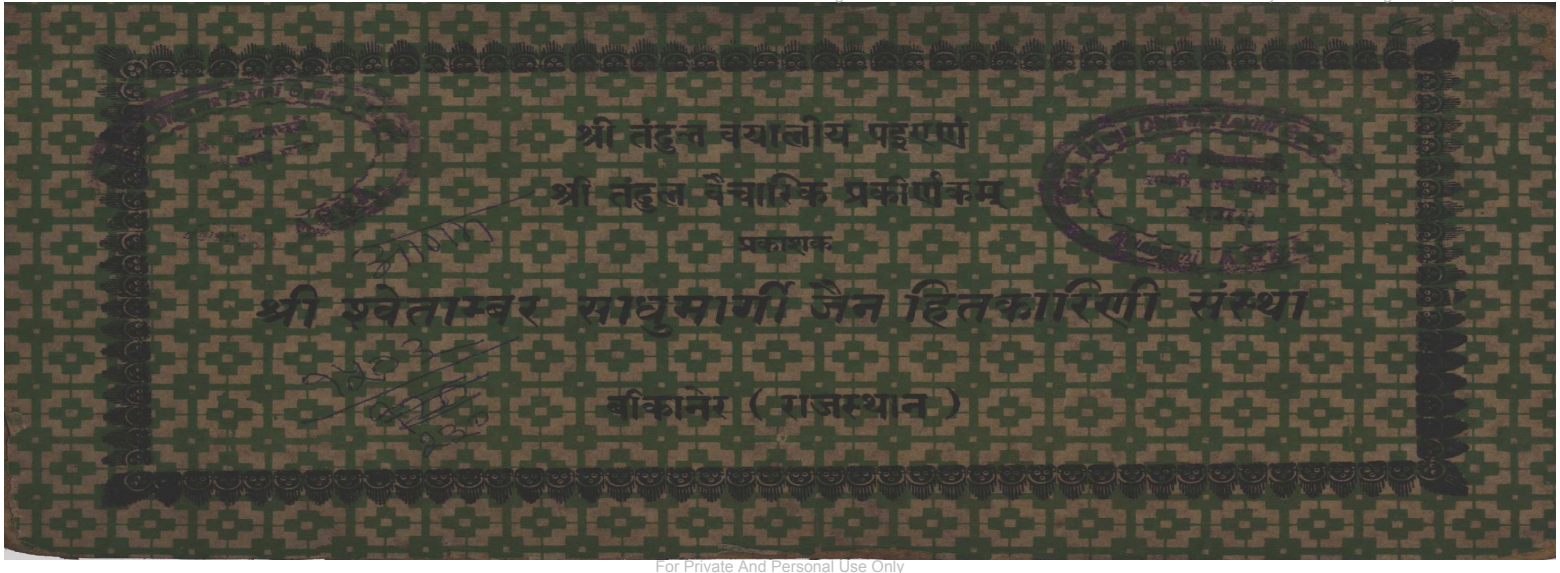

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. वृत्तबोध (संस्कृत छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थ)	मूल्य ≈)
२. जैनागम तत्त्वदीपिका (प्रश्नोत्तर के ढंग से जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ)	।≈)
३. श्रीलाल नाममाला (प्रारम्भिक संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए जैन पद्धति से रचा हुआ संस्कृत कोष)	।)
४. आलोयणा (विस्तार सहित)	(अप्राप्य)
५. श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० का जीवन चरित्र प्रथम भाग	४)
६. जवाहर विचार सार (श्रीमज्जवाहराचार्य के जीवन चरित्र का दूसरा भाग)	२)
७. तन्दुल वयालीय पइण्णा (गर्भ विषयक विचार का विस्तृत वर्णन)	१।।।)
८. श्री जिन जन्माभिषेक (तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म कल्याणक का विस्तृत वर्णन)	(छप रहा है)

प्राप्तिस्थान

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था,
रांगड़ी चौक, बीकानेर

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री तन्दुल वेयालिय पइण्णं

श्री तन्दुल वैचारिक-प्रकीर्णम्

(शुद्ध मूल पाठ, संस्कृत छाया और भावार्थ सहित)

अनुवादक

पं० अम्बिकादत्त ओझा व्याकरणाचार्य

सम्पादक और संशोधक

पं० घेवरचन्द्र बाँठिया 'वीरपुत्र' जैन सिद्धान्त शास्त्री, न्याय, व्याकरण तीर्थ

प्रकाशक

श्री श्वे० माधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

वीर संवत २४७६
विक्रम संवत २००६

मूल्य १।।।) पौने दो रुपया

प्रथमावृत्ति
५००

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुद्रक
श्री रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, नसीराबाद रोड अजमेर ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दो शब्द

जैन सूत्रों में (श्री भगवती सूत्र में तथा दूसरे दूसरे सूत्रों में) भिन्न भिन्न स्थानों पर गर्भ विषयक वर्णन आया है । दस पइण्णाओं (प्रकीर्णकों) में तन्दुलवयाली पांचवीं पइण्णा है । यह ग्रन्थ किसी प्राचीन पूर्वधर आचार्य का बनाया हुआ है । इस ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक गर्भ विषयक वर्णन किया गया है । यह सारा वर्णन एक ही जगह आजाने के कारण इस विषय को जानने की रुचि रखने वालों की सुविधा के लिए श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर की ओर से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करवा कर प्रकाशित किया जा रहा है ।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग में नारी-स्वभाव और नारी जाति के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने जो विचार प्रकट किये हैं वे एकपक्षीय हैं, क्योंकि न तो नारी ही बुरी है और न नर ही, किन्तु बुरी है विकार दृष्टि । इसलिए यदि ग्रन्थकार ने बिना किसी लिङ्ग भेद के विकार दृष्टि को बुरा बताया होता और मानवता के दृष्टिकोण से नारी-स्वभाव का विवेचन किया होता तो अच्छा होता । इससे ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ जाती । नारीस्वभाव का इस प्रकार वर्णन करने में ग्रन्थकार का क्या आशय था यह यथार्थ रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

इस पुस्तक में प्रूफ सम्बन्धी तथा अन्य कोई अशुद्धि रह गई हो तो पाठक महोदय अवश्य सूचित करें ताकि आगामी आवृत्ति में यथोचित सुधार कर दिया जाय ।

सम्पादक और संशोधक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तन्दुल वेयालिय पइण्णं

श्री तन्दुल वैचारिक-प्रकीर्णकम्

(शुद्ध मूल पाठ, संस्कृत छाया और भावार्थ)

निज्जरिय जरामरणं, वंदित्ता जिणवरं महावीरं । वुच्छं पयण्णयमिणं, तंदुल वेयालियं नाम ॥१॥

छाया—निर्जरित जरा मरणं, वन्दित्वा जिनवरं महावीरं । वक्ष्ये प्रकीर्णक मिदं, तन्दुल वैचारिकं नाम ॥१॥

भावार्थ—जिन्होंने बुढ़ापा और मृत्यु को सर्वथा क्षय कर दिया है तथा जो राग द्वेष का विजय करने वाले सामान्य केवलियों में प्रधान हैं ऐसे श्री भगवान् महावीर स्वामी को मन, वचन और काया से वन्दना करके तन्दुल वैचारिक नामक इस प्रकीर्णक को मैं कहूँगा ॥१॥

सुणह गणिए दह दसा वास सयाउस्स जह विभज्जंति । संकलिए वोगसिए जं चाउं सेसयं होइ ॥२॥

छाया—शृणुत गणिते दश दशाः, वर्ष शतायुषो यथा विभज्यन्ते । संकलिते व्युत्कृष्टे, यच्चायुषः शेषकं भवति ॥२॥

भावार्थ—जिसकी आयु सौ वर्ष की है, हिसाब करने पर उस मनुष्य की जिस तरह दश अवस्थाएँ होती हैं तथा उन दश ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अवस्थाओं को एकत्रित करके निकाल देने पर उस मनुष्य की जितनी आयु शेष बच जाती है उसका मैं वर्णन करूँगा, आप उसे सुनें ॥२॥

जत्तिय मित्ते दिवसे, जत्तिय राई मुहुत्त मुस्सासे । गब्भंमि वसइ जीवो, आहारविहिं य वुच्छामि ॥३॥

छाया—यावन्मात्रान् दिवसान्, यावद्रात्री मुहूर्त्तोच्छ्वासान् । गर्भे वसति जीवः, आहार विधिञ्च वक्ष्यामि ॥३॥

भावार्थ—यह जीव जितने दिन, रात, मुहूर्त्त और उच्छ्वास तक गर्भ में निवास करता है तथा वहाँ वह जो आहार करता है यह सब विषय मैं बतलाऊँगा ॥३॥

दुण्णि अहोरत्त सए संपुण्णे, सत्तसत्तरिं चेव । गब्भंमि वसइ जीवो, अद्ध महोरत्त मण्णं च ॥४॥

छाया—द्वे ऽ होरात्रशते सम्पूर्णे, सप्तसप्ततिञ्चैव । गर्भे वसति जीवो ऽ र्द्ध महोरात्र मन्यच्च ॥४॥

भावार्थ—यह जीव २७७॥ दो सौ साढे सतहत्तर दिन रात तक गर्भ में निवास करता है ॥४॥

ए ए उ अहोरत्ता, णियमा जीवस्स गब्भवासंमि । हीणाहिया उ इत्तो उवघायवसेण जायंति ॥५॥

छाया—एते त्वहोरात्राः, नियमतो जीवस्य गर्भवासे । हीनाधिकास्त्वित उपघात वशेन जायन्ते ॥५॥

भावार्थ—२७७॥ दो सौ साढ़े सतहत्तर दिन रात तो निश्चय ही गर्भवास में लग जाते हैं परन्तु वात पित्तादि दोषों के उत्पन्न होने पर इन से कम या अधिक अहोरात्र भी कभी कभी गर्भवास में गुजर जाते हैं ॥५॥

अट्ठ सहस्सा तिण्णि उ, सया मुहुत्ताण पण्णवीसा य । गब्भगओ वसइ जीओ, णियमा हीणाहिया इत्तो ॥६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—अष्टौ सहस्राणि त्रीणि तु, शतानि मुहूर्त्तानां पञ्चविंशतिं च । गर्भगतो वसति जीवः, नियमाद् हीनाधिकानीतः ॥६॥

भावार्थ—जीव आठ हजार तीन सौ पचीस मुहूर्त्त तक निश्चय ही गर्भ में निवास करता है, परन्तु वात आदि के प्रकोप से कम या ज्यादा भी हो सकता है। पहले २७७॥ दो सौ साढे सत्तहतर अहोरात्र तक गर्भ में निवास का काल कहा गया है। एक अहोरात्र के ३० मुहूर्त्त होते हैं, इसलिये २७७॥ अहोरात्र को ३० से गुणन करने पर ८३२५ संख्या होती है, यही मुहूर्त्तों की संख्या जाननी चाहिये ॥६॥

तिण्णेव य कोडीओ, चउदस हवंति सयसहस्साइं। दस चेव सहस्साइं, दुण्णि सया पण्णवीसा य ॥७॥
उस्सासा निस्सासा, इत्तियमित्ता हवंति संकलिया। जीवस्स गब्भवासे, णियमा हीणाहिया इत्तो ॥८॥

छाया—तिस्रश्च कोटयश्चतुर्दश भवन्ति शतसहस्राणि। दश चैव सहस्राणि, द्वे शते पञ्चविंशतिञ्च ॥७॥
उच्छ्वासा निःश्वास1, एतावन्मात्राः भवन्ति सङ्कलिताः। जीवस्य गर्भवासे, नियमाद् हीनाधिका इतः ॥८॥

भावार्थ—तीन कोटि चौदह लाख दश हजार दो सौ पचीस ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वास तक निश्चय जीव गर्भ में निवास करता है परन्तु वात आदि के दोष से कम ज्यादा होना भी सम्भव है। आशय यह है कि—एक मुहूर्त्त में ३७७३ उच्छ्वास निःश्वास होते हैं। इसलिये गर्भवास काल के ८३२५ मुहूर्तों का ३७७३ से गुणन करने पर ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वासों की संख्या होती है। इसलिये ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वास तक जीव का गर्भ में निवास कहा गया है ॥७॥८॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आउसो ! इत्थीए नाभिहिट्ठा, सिरादुगं पुप्फणालियागारं । तस्स य हिट्ठा जोणी, अहोमुहा संठिया कोसा ॥९॥

छाया —आयुष्मन् ! स्त्रियाः नाभेरधः, शिराद्विकं पुष्पनालिकाकारम् । तस्य चाधो योनिः, अधोमुखा संस्थिता कोशा ॥९॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् गौतम ! स्त्री की नाभि के नीचे फूल की डंडी के समान आकार वाली दो नाडियाँ होती हैं । उन नाडियों के नीचले भाग में योनि होती है । उस योनि का मुख नीचे की ओर होता है और वह तलवार के म्यान के समान होती है ॥९॥

तस्स य हिट्ठा चूयस्स, मंजरी (जारिसी) तारिसा उ मंसस्स । ते रिउकाले फुडिया, सोणियलवया विमोयंति ॥१०॥

छाया—तस्याश्चाधः चूतस्य, मञ्जर्यो (यादृश्यः) तादृश्यस्तु मांसस्य । ता ऋतुकाले स्फुटिताः, शोणित लवकान् विमुञ्चन्ति ॥१०॥

भावार्थ—उस योनि के नीचे आम की मञ्जरी के समान मांस की मञ्जरी होती है, वह मञ्जरी ऋतुकाल में फूट जाती है, इसलिये उससे रक्त बिन्दु का पतन होता है ॥१०॥

कोसायारं जोणिं संपत्ता, सुक्कमीसिया जइया । तइया जीवुववाए, जुग्गा भणिया जिणिंदेहिं ॥११॥

छाया—कोशाकारां योनिं सम्प्राप्ताः शुक्रमिश्रिताः यदा । तदा जीवोत्पादे, योग्या भणिता जिनेन्द्रैः ॥११॥

भावार्थ—वे रुधिरबिन्दु पुरुष के संयोग से शुक्रमिश्रित होकर जब कोश के समान आकार वाली स्त्री की योनि में प्रवेश करते हैं, तब वह स्त्री जीव के उत्पन्न करने योग्य होती है, यह जिनवरों ने कहा है ॥११॥

बारस चेव मुहुत्ता, उवरिं विद्धंस गच्छई सा उ । जीवाणं परिसंखा, लक्खपुहुत्तं य उक्कोसं ॥१२॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—द्वादश चैव मुहूर्तान्, उपरि विध्वंसं गच्छति सा तु। जीवानां परिसंख्या, लक्षपृथक्त्वं च उत्कृष्टम् ॥१२॥

भावार्थ—पुरुष के वीर्य से संयुक्त स्त्री की योनि बारह मुहूर्त तक ही अध्वस्त यानी गर्भ धारण करने योग्य रहती है, उसके बाद यानी बारह मुहुर्त के पश्चात् उसकी गर्भ धारण की योग्यता नष्ट हो जाती है। स्त्री के गर्भ में गर्भज जन्तुओं की संख्या दो लाख से लेकर नौ लाख तक की कही गई है ॥१२॥

पण्णाय परेणं, जोणी पमिलायए महिलियाणं। पणसत्तरिइ परओ, पाएण पुमं भवेऽवीओ ॥१३॥

छाया—पञ्चपञ्चाशद्भ्यः, परेण योनिः प्रम्लायते महिलानाम्। पञ्चसप्ततिभ्यः परतः, प्रायेण पुमान् भवदेवीर्यः ॥१३॥

भावार्थ—५५ वर्ष के बाद स्त्री की योनि गर्भधारण करने योग्य नहीं रहती है तथा ७५ वर्ष के बाद पुरुष भी वीर्य हीन हो जाता है ॥१३॥

वास सयाउय मेयं, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ। तस्सद्धे अमिलाया, सव्वाउय वीसभागो य ॥१४॥

छाया—वर्षशतायुष्क मेतद्, परेण या भवति पूर्व कोटिः। तस्यार्द्धे अम्लाना, सर्वायुर्विंशति भागश्च ॥१४॥

भावार्थ—पूर्व की गाथा में जो कहा गया है कि– ५५ वर्ष के बाद स्त्री की योनि गर्भ धारण करने के योग्य नहीं रहती है और पुरुष भी ७५ वर्ष के बाद वीर्य्य हीन हो जाता है यह बात आजकल के सौ वर्ष की आयु के हिसाब से समझनी चाहिये। सौ वर्ष से अधिक जिनकी आयु है उन प्राणियों के विषय में पूर्वोक्त नियम नहीं है किन्तु उनकी आयु के आधे समय तक स्त्री की योनि गर्भ धारण करने योग्य रहती है और पुरुष अपनी आयु के बीसवें भाग में वीर्य्य हीन होता है यह जानना चाहिये ॥१४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रत्तुक्कडा उ इत्थी, लक्खपुहुत्तं य बारस मुहुत्ता । पिय संख सयपुहुत्तं, बारसवासा उ गब्भस्स ॥१५॥

छाया—रक्तोत्कटायास्तु स्त्रियाः, लक्ष पृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्तानि । पितृ संख्या शत पृथक्त्वं, द्वादश वर्षास्तु गर्भस्य ॥१५॥

भावार्थ—इस गाथा में यह बतलाया गया है कि—एक स्त्री के गर्भ में एक साथ कितने जीव उत्पन्न होते हैं और कितने पिता का एक पुत्र होता है। मासिक रक्तपात तीन दिन तक होता है। वह जिसका जारी है यानी जिस स्त्री का मासिक धर्म होना बन्द नहीं हुआ है उसकी योनि में जब पुरुष वीर्य्य का सिञ्चन करता है तो उसके गर्भ में जघन्य एक दो तीन तथा उत्कृष्ट नौ लाख जीव उत्पन्न होते हैं। उनमें से प्रायः एक या दो ही जन्म धारण करते हैं शेष नहीं, क्योंकि वे अल्पायु होने के कारण उस योनि में ही मर जाते हैं। पुरुष का वीर्य्य बारह मुहूर्त तक ही सन्तान उत्पादन के योग्य रहता है। उसके बाद उसकी वह शक्ति नष्ट हो जाती है। उत्कृष्ट नौ सौ पिता का एक पुत्र हो सकता है। आशय यह कि—जिस स्त्री का शरीर अत्यन्त मजबूत है। वह कामातुर होकर बारह मुहूर्त के अन्दर उत्कृष्ट यदि नौ सौ पुरुषों के साथ संयोग करती है तो उसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह नौ सौ पिता का पुत्र होता है। गर्भ की स्थिति उत्कृष्ट बारह वर्ष तक की होती है ॥१५॥

दाहिण कुच्छी पुरिसस्स, होइ वामा उ इत्थीयाए य । उभयंतरं नपुंसे, तिरिए अट्ठेव वरिसाइं ॥१६॥

छाया—दक्षिण कुक्षिः पुरुषस्य, भवति वामा तु स्त्रियाश्च । उभयान्तरं नपुंसकस्य, तिरश्चामष्टौ वर्षाणि ॥१६॥

भावार्थ—स्त्री की दक्षिण कुक्षि में बसने वाला जीव पुरुष होता है और वाम कुक्षि में बसने वाला जीव स्त्री होता है तथा कुक्षि के मध्य भाग में बसने वाला जीव नपुंसक होता है। तिर्यञ्चों की गर्भस्थिति उत्कृष्ट आठ वर्ष की होती है ॥१६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इमो खलु जीवो अम्मापिउ संजोगे माउउयं पिउसुक्कं तं तदुभय संसट्ठं कलुसं किब्बिसं तप्पढमयाए आहारं आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ ॥ सूत्रम् ॥१॥

छाया—अयं खलु जीवः मातृपितृसंयोगे मातुरार्त्तवं पितुः शुक्रं तत् तदुभयसंसृष्टं कलुषं किल्बिषं तत्प्रथमतया आहार माहार्य्य गर्भत्वाय व्युत्क्रामति।१

भावार्थ—माता पिता के संयोग होने पर यह जीव गर्भ में आता है तब पहले पहल तैजस और कार्माण शरीर के द्वारा माता का रज और पिता का शुक्र इन दोनों से मिश्रित मलिन किल्विष आहार को ग्रहण करता है।

सत्ताहं कललं होइ, सत्ताहं होइ अब्बुयं। अब्बुया जायए पेसी, पेसीओय घणं भवे। (१) ॥१७॥

छाया—सप्ताहं कललं भवति, सप्ताहं भवति अर्बुदः। अर्बुदाज्जायते पेशी, पेशीतश्च घनं भवेत् ॥१६॥

भावार्थ—वह जीव गर्भ में आकर किस प्रकार शरीर तैयार करता है, यह बताया जाता है। सात दिन रात तक वह शुक्र और शोणित का समूह कलल रूप रहता है। उसके बाद कुछ घनभाव को प्राप्त होकर सात अहोरात्र तक अर्बुदरूप में रहता है। उसके बाद वह मांस का खण्ड रूप हो जाता है। उसके पश्चात् वह घन चतुष्कोण मांसपिण्ड बन जाता है।

तो पढमे मासे करिसूणं पलं जायइ। बीए मासे पेसी संजायए घणा। तइए मासे माउए दोहलं जणयइ। चउत्थे मासे माउए अंगाइं पीणेइ। पंचमे मासे पंच पिंडियाओ पाणिं पायं सिरं चेव निव्वत्तेइ। छट्ठे मासे पित्त सोणियं उवचिणेइ। सत्तमे मासे सत्तसिरासयाइं ७००, पंच पेसी सयाइं ५००, नवधमणीओ, नवनउइं च रोमकूव सय सहस्साइं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९९०००००० निव्वत्तेइ विणा केसमंसुणा, सहकेसमंसुणा अद्धुट्टाओ रोम कूवकोडीओ ३५०००००० निव्वत्तेइ। अट्ठमे मासे वित्तीकप्पो हवइ ॥ सूत्रं ॥२॥

छाया—तत्प्रथमे मासे कर्षोनं पलं जायते। द्वितीये मासे पेशी सञ्जायते घना। तृतीये मासे मातुर्दोहदं जनयति। चतुर्थे मासे मातुरङ्गानि प्रीणयति। पञ्च पिण्डिकाः पाणी पादौ शिरश्चैव निर्वर्तयति। षष्ठे मासे पित्तशोणित मुपचिनोति। सप्तमे मासे सप्तशिराशतानि पञ्च पेशीशतानि नव धमनीः नवनवतिश्च रोमकूपशत सहस्राणि निर्वर्तयति विना केश श्मश्रुभिः। सह केशश्मश्रुभिःसार्द्धाः रोमकूपकोटीः निर्वर्तयति, अष्टमे मासे निष्पन्नप्रायो भवति।

भावार्थ—वह शुक्र और शोणित दिनोदिन बदलता हुआ प्रथम मास में एक कर्ष कम एक पल का होजाता है। पाँच गुञ्जा का एक मासा होता है और सोलह मासा का एक कर्ष होता है एवं चार कर्ष का एक पल होता है। इस प्रकार वह शुक्र शोणित प्रथम मास में तीन कर्ष का होता है यह जानना चाहिये। दूसरे मास में वह मांसपिण्ड बन कर घन और समचतुरस्र हो जाता है। तीसरे मास में वह माता को दोहद उत्पन्न करता है। चौथे मास में वह माता के अङ्गों को पुष्ट करता है। पाचवें मास में दो हाथ दो पैर और शिर उत्पन्न होते हैं। छठे मास में पित्त और रक्त पुष्ट होता है। सातवें मास में ७०० नसें, ५०० पेशी और नौ धमनी उत्पन्न होती हैं तथा शिर के बाल और दाढी मूँछ के रोम कूपों को छोड़कर ९९०००००० रोम कूप उत्पन्न होते हैं। यदि शिर के बाल और दाढी मूँछ के कूपों को शामिल करलें तो साढे तीन कोटि रोमकूप उत्पन्न होते हैं। आठवें मास में वह गर्भ प्रायः पूर्ण होजाता है।॥ सूत्र २॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारेइ वा पासवणेइ वा खेलेइ वा सिंघाणेइ वा वंतेइ वा पित्तेइ वा सुक्केइ वा सोणिएइ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा । गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे जं आहारं आहारेइ तं चिणाइ सोईंदियत्ताए चक्खुरिंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए जिब्भिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए अट्ठिअट्ठिमिंजकेसमंसुरोमनहत्ताए । से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा ॥ सूत्रं ३ ॥

छाया—जीवस्य भदन्त ! गर्भगतस्य सतोऽस्ति उच्चारो वा प्रश्रवणं वा खेलो वा सिंघानो का वान्तं वा पित्तं वा शुक्रं वा शोणितं वा ? नायमर्थः समर्थः । तत्केनार्थेन भदन्त एव ! मुच्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो वा यावत् प्रश्रवणं वा ? गौतम ! जीवः गर्भगतः सन् यमाहार-माहारयति स चिनोति श्रोत्रेन्द्रियतया चक्षुरिन्द्रियतया घ्राणेन्द्रियतया जिव्हेन्द्रियतया स्पर्शेन्द्रियतया अस्थ्यस्थि मज्जा केशश्मश्रुरोमनख तया । तद् एतेनार्थेन गौतम ! एव मुच्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो यावत्शोणितं वा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे भगवन् ! गर्भवासी जीव मल मूत्र करता है या नहीं ? तथा उसके खंखार, नाक का मल, वमन, पित्त, वीर्य्य और रक्त होते हैं या नहीं ? हे गौतम ! ये सब गर्भवासी जीव के नहीं होते । हे भगवन् ! क्यों नहीं होते ? हे गौतम ! गर्भगत जीव जो आहार करता है वह आहार श्रोत्र,चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शेन्द्रिय तथा हड्डी, मज्जा, केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम और नखरूप में परिणत हो जाता है । इसलिए गर्भगत जीव के पूर्वोक्त विष्ठा आदि नहीं होते हैं ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे णो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ? गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ सव्वओ परिणामेइ सव्वओ ऊससेइ सव्वओ नीससेइ, अभिक्खणं आहारेइ अभिक्खणं परिणामेइ अभिक्खणं ऊससेइ अभिक्खणं नीससेइ, आहच्च आहारेइ आहच्च परिणामेइ आहच्च ऊससेइ आहच्च नीससेइ। माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवं फुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ अवरा वि णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीव फुडा तम्हा चिणाइ। से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–जीवेणं गब्भगए समाणे णो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ॥ सूत्रं ४ ॥

छाया—जीवो भदन्त ! गर्भगतः सन् प्रभुर्मुखेन कावलिक माहार माहार्तुम् ! गौतम ! नायमर्थः समर्थः। अथ केनार्थेन भदन्त ! एव मुच्यते गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् न प्रभुः मुखेन कावलिक माहार माहर्तुम् ? गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् सर्वत। आहारयति सर्वतः परिणामयति सर्वतः उच्छ्वसिति सर्वतः निःश्वसिति, अभीक्ष्णमाहारयति अभीक्ष्णं परिणामयति अभीक्ष्ण मुच्छ्वसिति अभीक्ष्णं निःश्वसिति। आहृत्य (कदाचित्) आहारयति आहृत्य परिणामयति आहृत्य उच्छ्वसिति आहृत्य निःश्वसिति मातृजीवरसहरणी पुत्रजीवरसहरणी मातृजीव प्रतिबद्धा पुत्रजीवं स्पृष्टा तस्मादाहारयति तस्मात् परिणामयति अपरापि पुत्रजीवप्रतिबद्धा मातृजीवस्पृष्टा, तस्मात् चिनोति। अथानेनार्थेन गौतम ! एव मुच्यते जीवः गर्भगतः सन् न प्रभुः मुखेन कावलिक माहारमाहर्तुम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! गर्भगत जीव मुख द्वारा कवलाहार को ग्रहण करने में समर्थ है या नहीं ? । हे गौतम ! यह बात नहीं हो सकती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। हे भगवन् ! क्या कारण है कि गर्भगत जीव मुख से कवलाहार ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता है ? हे गौतम ! गर्भगत जीव सब प्रकार से आहार ग्रहण करता है तथा वह सब प्रकार से उसका परिणमन करता है। सब प्रकार से वह ऊपरका श्वास लेता है, सब प्रकार से श्वास को छोड़ता है। वह सदा ही आहार करता रहता है, सदा ही उसका परिणमन करता रहता है, सदा ही ऊर्ध्व श्वास लेता है और सदा ही श्वास-को छोड़ता रहता है। वह कभी आहार करता है और कभी नहीं भी करता है। कभी उसका परिणमन करता है। और कभी नहीं करता है। कभी श्वास लेता है और कभी नहीं भी लेता है। कभी श्वास छोड़ता है और कभी नहीं छोड़ता है। माता की जो रसहरणी यानी रस को ग्रहण करने वाली नाभि की नाली है वही पुत्र की भी नाभि की नाली है। वह माता के शरीर में बँधी हुई रह कर पुत्र के जीव को स्पर्श करती है अथवा माता की रसहरणी और पुत्र की रसहरणी ये दो नाड़ियाँ होती हैं। इनमें माता की रसहरणी नाड़ी माता के शरीर में बँधी हुई रह कर पुत्र के जीव को स्पर्श करती है इसलिये वह गर्भगत जीव उस माता की रसहरणी नाड़ी द्वारा आहार को ग्रहण करता है और उसी के द्वारा उसे पचाता है। माता की रसहरणी नाड़ी के समान ही पुत्र जीव की रसहरणी नाड़ी भी होती है। वह पुत्र के जीव में बँधी रह कर माता के जीव को स्पर्श करती है, उस नाड़ी के द्वारा वह अपने शरीर की पुष्टि करता है। हे गौतम ! इसी हेतु से ऐसा कहा है कि गर्भगत जीव मुख द्वारा कवलाहार को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

जीवेणं गब्भगए समाणे किमाहारं आहारेइ ? गोयमा ! जं से माया णाणाविहाओ नवरसविगइओ तित्तकडुय कसायं-बिल महुराइं दव्वाइं आहारेइ। त ओ एगदेसेणं ओयमाहारेइ, तस्स फलविंट सरिसा उप्पल नालोवमा भवइ नाभिरसहरणी जणणीए सयाइं नाभीए पडिबद्धा। नाभीए तीए गब्भो ओयं आइयइ। अणहयंतीए ओयाए लीए गब्भो विवड्ढइ जाव जाउत्ति ॥ सूत्रं ५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—जीवो गर्भगतः सन् किमाहार माहारयति ? गौतम ! या तस्य माता नानाविधाः नवरसविकृतीः तिक्तकटु कषायाम्ल मधुराणि द्रव्याणि आहारयति तत एक देशेन ओज आहारयति । तस्य फलन्वृत सदृशी उत्पलनालोपमा भवति नाभिरसहरणी जनन्याः सदा नाभ्या प्रतिबद्धा नाभ्या तया गर्भः ओज आदत्ते । भुञ्जानायां ओजसा तस्यां गर्भो विवर्धते यावाज्जात इति ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! गर्भ का जीव क्या आहार खाता है ? हे गौतम ! गर्भधारण करनेवाली माता जो दूध आदि रसीले पदार्थ तथा तिक्त, कटु, कसैले, खट्टे और मीठे पदार्थों का आहार करती है उसके अंशभूत शुक्र और शोणित समूह को अथवा माता के आहार से मिले हुए शोणित को वह गर्भ भक्षण करता है। उस गर्भ का नाभिनाल फल की डंडी और कमल की नाल के समान होता है। वह नाभि नाल माता की नाभि से सदा ही जुडा हुआ रहता है। उस नाल के द्वारा ही वह गर्भ ओज आहार को ग्रहण करता है। जब उसकी माता आहार खाने लगती है तब वह गर्भ भी माता के आहार से मिले हुए शुक्र और शोणित रूप ओज आहार को ग्रहण करके वृद्धि को प्राप्त होता है और वृद्धि को प्राप्त होकर जन्म लेता है ॥ ५ ॥

कइणं भंते ! माउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ माउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—मंसे, सोणिए, मत्थुलुंगे । कइणं भंते पिउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ पिउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठि अट्ठि मिंजा, केस मंसुरोम नहा ॥ सूत्रं ६ ॥

छाया—कति भदन्ता ! मातुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि मातुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा मांसं, शोणितं मस्तुलुंगं । कति भदन्त ! पितुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि पितुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—अस्थि, अस्थिमिञ्जा, केशश्मश्रु रोमनखाः ॥ ६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—हे भगवन् ! बालक के कितने अङ्ग माता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं ? हे गौतम ! बालक के तीन अङ्ग माता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं जैसे कि—मांस, रक्त और मस्तिष्क। कोई कोई मेद और फिप्फिस आदि को मस्तुलुंग कहते हैं, मस्तिष्क को नहीं। हे भगवन्। बालक के कितने अङ्ग पिता के अंश शुक्र से उत्पन्न माने जाते हैं ? हे गौतम ! तीन अङ्ग पिता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं। जैसे कि—हड्डी और हड्डी के मध्य मे रहने वाली मज्जा एवं शिर के बाल, दाढी, मूंछ, रोम और नख। बाकी के अङ्ग सब माता और पिता दोनों के अंश से मिश्रित माने जाते हैं ॥ ६ ॥

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जिज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा। से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ–जीवेणं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जिज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा। गोयमा ! जेणं जीवे गब्भगए समाणे सएणी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए विभंगणाणलद्धीए विउव्वियलद्धीए विउव्वियलद्धीपत्ते पराणीयं आगयं सुच्चा णिसम्म पएसे निच्छुहइ निच्छुहित्ता विउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता चाउरंगिणीं सिएणं सएणाहेइ सएणाहित्ता पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ, सेणं जीवे अत्थकामए रज्जकामए भोगकामए कामकामए, अत्थकंखिए रज्जकंखिए भोगकंखिए कामकंखिए अत्थपिवासिए भोग रज्जकाम पिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तयज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तयट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणा भाविए एयंसि च णं (चे) अंतरंसि कालं करिज्जा णेरइएसु उववज्जिज्जा। से एएणं अट्ठेणं एवं वुच्चइ जीवेणं गब्भगए समाणे णेरइएसु अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा गोयमा ! ॥ सूत्रम् ७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—जीवो भदन्त ! गर्भगतः सन् नरकेषूत्पद्यते ? गौतम ! अस्त्येकक उत्पद्यते अस्त्येकको नोत्पद्यते । अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते जीवः गर्भगतः सन् नरकेषु अस्त्येकक उत्पद्यते अस्त्येकको नोत्पद्यते ? गौतम ! जीवः गर्भगतः सन् संज्ञी पञ्चेन्द्रियः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः वीर्य्यलब्ध्या विभङ्ग ज्ञानलब्ध्या वैक्रियलब्धिप्राप्त; परानीकमागतं श्रुत्वा निशम्य प्रदेशान् निःक्षुम्णाति वैक्रियसमुद्घातेन समवहन्ति समवहत्य चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नाहयति, सन्नाह्य परानीकेन सार्धं संग्रामं संग्रामयति, स जीवोऽर्थकामुकः राज्यकामुकः भोगकामुकः कामकामुकः, अर्थकाङ्क्षितः भोगकाङ्क्षितः कामकाङ्क्षितः, अर्थ पिपासितः भोग राज्य काम पिपासितः, तच्चित्तः तन्मनाः तल्लेश्यः तदध्यवसितः तत्तीव्राध्यवसानः तदर्थोपयुक्तः तदर्पितकरणः तदभावनाभावितः एतस्मिन्तरे कालं कुर्य्याच्चैरयिके षूत्पद्यते । अथैतेनार्थेन एवमुच्यते जीवः गर्भगतः सन् नरकेषु अस्त्येकक उत्पद्यते अस्त्येकको नोत्पद्यते गौतम ! ॥७॥

भावार्थ—हे भगवन् ! गर्भवासी जीव मर कर क्या नरक में उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! कोई कोई जीव उत्पन्न होता है और कोई नहीं उत्पन्न होता है । हे भगवन् ! गर्भवासी जीव कोई कोई मर कर नरक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! गर्भवासी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव जो सभी पर्याप्तियों से पूर्ण होगया है वह पूर्वभव की वीर्य्यलब्धि, विभङ्गज्ञान लब्धि और वैक्रियलब्धि को प्राप्त करके शत्रु की सेना को आई हुई सुन कर तथा मन से निश्चय करके अपने प्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है और वैक्रियलब्धि समुद्घात के द्वारा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना तैयार करता है । इस प्रकार वह शत्रु की सेना के साथ संग्राम करता है । उस मनुष्य की द्रव्य में इच्छा है तथा राज्य, भोग और काम में इच्छा है । वह द्रव्य, राज्य, भोग और काम में आसक्त है । उसकी धन, राज्य, भोग और काम में तृप्ति नहीं है । उसका धन, राज्य, भोग और काम में उपयोग है तथा इन्हीं में उसका विशेष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपयोग है। उसका अर्थ, राज्य, काम और भोग में परिणाम है। वह अर्थ, राज्य, भोग और काम के सम्पादन का ही विचार रखता है। वह इन्हीं के लिये तीव्र प्रयत्न करता है तथा इन्हीं के लिये सदा तैयार रहता है। वह अपनी समस्त इन्द्रियों को इन्हीं में अर्पित किया हुआ इनकी भावना से ही भावित रहता है। उस समय यदि उसकी मृत्यु होजाय तो वह अत्यन्त दुःख पूर्ण नरक में उत्पन्न होता है। हे गौतम ! यही कारण है कि– गर्भवासी जीव कोई नरक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोएसु उववज्जिज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जिज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा ? गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वेउव्वियलद्धीए ओहिणाणलद्धीए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सुच्चा णिसम्म तओ से हवइ तिव्व संवेग संजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से णं जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मुक्खकामए धम्मकंखिए पुण्णकंखिए सग्गकंखिए मुक्खकंखिए धम्मपिवासिए पुण्णपिवासिए सग्गपिवासिए मुक्खपिवासिए तच्चिचे तम्मणे तल्लेस्से तयज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदप्पियकरणे तयट्ठोवउत्ते तब्भावणाभाविए एयंसि णं (चे) अंतरंसि कालं करिज्जा देवलोएसु उववज्जिज्जा, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अत्थे गइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा ॥ सूत्रं ८ ॥

छाया—जीवो हे भदन्त ! गर्भगतः सन् देवलोकेषूत्पद्यते ? हे गौतम ! अस्त्येकक उत्पद्यते, अस्त्येकको नोत्पद्यते। अथ केनार्थेन हे भदन्त ! एवमुच्यते अस्त्येकक उत्पद्यते, अस्त्येकको नोत्पद्यते ? हे गौतम ! यो जीवो गर्भगतः सन् संज्ञी पञ्चेन्द्रियः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर्याप्तः पूर्वभविक वैक्रियलब्धिकः पूर्वभविकावधिज्ञान लब्धिकस्तथारूपस्य श्रमणस्य माहनस्य वा अन्तिकं एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य ततः स भवति तीव्रसंवेगसञ्जातश्रद्धः तीव्रधर्मानुरागरक्तः। स जीवो धर्मकामुकः पुण्यकामुकः स्वर्गकामुकः मोक्षकामुकः धर्मकाङ्क्षितः पुण्यकाङ्क्षितः स्वर्गकाङ्क्षितः मोक्षकाङ्क्षितः धर्मपिपासितः पुण्यपिपासितः स्वर्गपिपासितः, मोक्षपिपासितः तच्चित्तः तन्मनाः तल्लेश्यः तदध्यवसितः तत्तीव्राध्यवसायः तदर्पितकरणः तदर्थोपयुक्तः, तद्भावनाभावितः एतस्मिन्नन्तरे कालं कुर्यात् तदा देवलोकेषूत्पद्यते। अथैतेनार्थेन हे गौतम ! एवमुच्यते अस्त्येकक उत्पद्यते, अस्त्येकको नोत्पद्यते।

भावार्थ—हे भगवन् ! क्या गर्भवासी जीव मर कर देवलोक में उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि—कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है ? हे गौतम ! जो जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय है और समस्त पर्य्याप्तियों से पूर्ण हो गया है वह पूर्व भव की वैक्रियलब्धि तथा अवधिज्ञानलब्धि के द्वारा तथारूप के श्रमण माहन के निकट एक भी आर्य्य धार्मिक सुन्दर वचन को सुनकर उसके प्रभाव से धर्म का श्रद्धालु हो जाता है और सांसारिक लाखों दुःखों को जानकर उनसे विरक्त हो जाता है। धर्म में तीव्र अनुराग होने से वह उस रङ्ग में रञ्जित हो जाता है। वह जीव धर्म की इच्छा करता है, वह पुण्य की इच्छा करता है। वह स्वर्ग तथा मोक्ष की इच्छा करता है। वह धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष में आसक्त हो जाता है एवं धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष में उसकी तृप्ति नहीं होती है। उसका मन धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष में लगा रहता है एवं इन्हीं विषयों का वह विशेष उपयोग रखता है तथा इन्हीं विषयों के सम्पादन करने का उसका अध्यवसाय होता है। वह तीव्र रूप से इनके लिये प्रयत्न करता है वह इन्हीं विषयों में सदा उपयोग रखता है, वह इन्हीं में अपनी इन्द्रियों को अर्पण कर देता है एवं इनकी भावना से ही वह सदा रञ्जित रहता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। ऐसे समय में मृत्यु को प्राप्त हो कर वह जीव देवलोक में उत्पन्न होता है इसी कारण मैंने यह कहा है कि– हे गौतम ! कोई गर्भगत जीव स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है ॥८॥

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुज्जएवा अच्छिज्ज वा चिट्ठिज्ज वा निसीज्ज वा तुयट्टिज्ज वा आसइज्ज वा माउए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहियाए सुहिओ हवइ दुहियाए दुहिओ (दुक्खिओ) हवइ ? हंता गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे उताणए वा जाव दुहिओ (दुक्खिओ) हवइ ॥ सूत्रं ९ ॥

छाया—जीवो भदन्त ! गर्भगतः सन् उत्तानको वा पार्श्वशायी वा आम्रकुब्जको वा आसीत वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा त्वग्वर्तयेद्वा आश्रयति वा शयीत वा मातरि शयानायां शेते जाग्रयां जागर्ति वा सुखितायां सुखितो भवति दुःखितायां दुःखितो भवति ? हन्त ! गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् उत्तानको वा यावत् दुःखितो भवति ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! गर्भ में रहा हुआ जीव कभी उत्तान होकर रहता है या नहीं तथा वह कभी बगल से सोकर रहता है या नहीं एवं वह कभी आम्रफल की तरह झुककर रहता है या नहीं ? वह कभी बैठता है या नहीं ? कभी लेटता है या नहीं तथा वह कभी करवटें बदलता है या नहीं ? वह गर्भ के मध्यप्रदेश में आता है या नहीं ? वह कभी सोता है या नहीं ? वह माता के शयन करने पर सोता है या नहीं तथा उसके जागने पर जागता है या नहीं ? वह माता के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है या नहीं ? उत्तर— हाँ, गौतम ! गर्भगत जीव ये पूर्वोक्त सभी बातें करता है।

थिरजांय विहु रक्खइ, सम्मं सारक्खई तओ जणणी। संवाहई तुयट्टइ, रक्खइ अप्पंय गब्भं य ॥ १८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—स्थिरजातमपि रक्षति, सम्यक संरक्षति ततो जननी । संवहति त्वग्वर्तयति रक्षत्यात्मानञ्च गर्भञ्च ॥१८॥

भावार्थ—जब गर्भ स्थिर होजाता है तब माता उसकी रक्षा करती है। वह उसकी रक्षा के लिये विशेष प्रयत्न करती है। वह उसे लेकर जाती आती है, उसे सुलाती है और आहार खिलाकर अपनी तथा गर्भ की भी रक्षा करती है।

अणुसुयइ सुयंतीए, जागरमाणीए जागरइ गब्भो । सुहियाए होइ सुहिओ, दुहियाए दुहिओ होइ ॥१९॥

छाया—अनुशेते शयानायां, जाग्रत्यां जागर्ति गर्भः । सुखितायां भवति सुखितः, दुःखितायां दुःखितो भवति ॥१९॥

भावार्थ—जब माता सोती है तब गर्भ भी सोता है और माता के जागने पर वह भी जागता रहता है। जब माता दुःखित होती है तब गर्भ भी दुःखित होता है और जब वह सुखी होती है तब गर्भ भी सुखी रहता है ॥१९॥

उच्चारे पासवणे खेलं, सिंघाणओ वि से णत्थि । अट्ठीट्ठी मिंज्जणह, केस मंसु रोमेसु परिणामो ॥२०॥

छाया—उच्चारः प्रश्रवणं खेलो, सिंघानकोऽपि तस्य नास्ति । अस्थ्यस्थि मज्जा नखकेशश्मश्रु रोमसु परिणामः ॥२०॥

भावार्थ—उस गर्भ के जीव में मल मूत्र थूक नाक का मल नहीं होते हैं। वह जो आहार करता है वह हड्डी, हड्डी की मज्जा, नख, केश, दाढी मूँछ और रोम के रूप में परिणत हो जाता है ॥२०॥

एवं बुंदिमइगओ, गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो । परम तमिसंधयारे, अमिज्झभरिए पएसम्मि ॥२१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—एवं शरीर मतिगतो, गर्भे संवसति दुःखितो जीवः परमतमिस्रान्धकारे अमेध्यभूते प्रदेशे ॥२१॥

भावार्थ—इस प्रकार शरीर को प्राप्त होकर जीव गर्भ में बहुत कष्ट के साथ निवास करता है। गर्भ में घोर अन्धकार रहता है और वह अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ होता है।

आउसो ! तओ नवमे मासे तीए वा पडुपण्णे वा अणागए वा चउण्हं माया अण्णयरं पयायइ। तंजहा—इत्थिं वा इत्थिरूवेणं। पुरिसं वा पुरिसरूवेणं। नपुंसगं वा नपुंसगरूवेणं। बिंबं वा बिंबरूवेणं ॥ सूत्रं १० ॥

छाया—आयुष्मन् ! ततो नवमे मासेऽतीते वा प्रत्युत्पन्ने वा अनागते वा चतुर्णां माता अन्यतरं प्रजायते तद् यथा—स्त्रियं वा स्त्रीरूपेण, पुरुषं वा पुरुष रूपेण, नपुंसकं वा नपुंसक रूपेण, बिम्बं वा बिम्बरूपेण।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! आठ मास के पश्चात् जब नवम मास व्यतीत होजाता है अथवा जब वर्तमान रहता है अथवा जब आने वाला होता है तब माता चार में से किसी एक को उत्पन्न करती है। जैसे कि—स्त्री के रूप में स्त्री को, अथवा पुरुष के रूप में पुरुष को अथवा नपुंसक के रूप में नपुंसक को अथवा मांस पिण्ड के रूप में मांस पिण्ड को।

अप्पं सुक्कं बहु उउयं, इत्थी तत्थ जायइ। अप्पं उयं बहुं सुक्कं पुरिसो तत्थ जायइ ॥२२॥

छाया—अल्पं शुक्रं बहु आर्तवं, स्त्री तत्र जायते। अल्पमार्तवं बहु शुक्रं पुरुषस्तत्र जायते ॥२२॥

भावार्थ—जब स्त्री का आर्तव यानी रक्त अधिक और पुरुष का वीर्य्य अल्प होता है तब स्त्री की उत्पत्ति होती है और जब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्री का रक्त अल्प और पुरुष का वीर्य अधिक होता है तब पुरुष की उत्पत्ति होती है।

दुण्हं वि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे नपुंसगो। इत्थिउयसमाओगे, बिंबं तत्थ जायइ ॥२३॥

छाया—द्वयोरपि रक्त शुक्रयोः, तुल्यभावे नपुंसकः। स्त्र्योजः समायोगे बिम्बं तत्र जायते।

भावार्थ—जब शुक्र और शोणित दोनों ही बराबर होते हैं तब नपुंसक उत्पन्न होता है तथा जब स्त्री का रक्त वायु के कारण जम जाता है तब बिम्ब यानी मां सके पिण्ड की तरह बिम्ब उत्पन्न होता है।

अह णं पसवणकाल समयम्मि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ समागच्छइ तिरियमागच्छइ विणिग्घाय मावज्जइ ॥सूत्रं ११॥

छाया—अथ प्रसवकालसमये शीर्षेण वा पादाभ्यां वा आगच्छति समागच्छति तिर्य्यगागच्छति विनिघात मापद्यते।

भावार्थ—जो जीव प्रसव के समय शिर से या पैरों से निकलता है वह बिना बाधा के निकल जाता है परन्तु जो तिरछा होकर निकलता है वह मर जाता है।

कोई पुण पावकारी, बारस संवच्छराइं उक्कोसं। अच्छइ उ गब्भवासे, असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥२४॥

छाया—कोऽपि पुनः पापकारी, द्वादशसंवत्सराणि उत्कृष्टं। तिष्ठति तु गर्भवासे, अशचिप्रभवेऽशुचिके ॥२४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—जिसमें अशुचि उत्पन्न होती है और जो अशुचिरूप है ऐसे गर्भ में कोई पापी जीव उत्कृष्ट बारह वर्ष तक निवास करता है।

जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो। तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ णाप्पणो ॥२५॥

छाया—जायमानस्य यद्दुःखं, म्रियमाणस्य वा पुनः। तेन दुःखेन संमूढो, जातिं स्मरति नात्मनः ॥२५॥

भावार्थ—गर्भ से बाहर निकलते समय तथा मरण के समय प्राणी को जो दुःख होता है उससे मूढ बना हुआ प्राणी अपने पूर्व जन्म को स्मरण नहीं कर सकता है।

वीसरसरं रसंतो जो सो, जोणी मुहाओ निप्फिडइ। माऊए अप्पणोऽवि य वेयणमउलं जणेमाणो ॥२६॥

छाया—विस्वरस्वरं रसन् यः स, योनिमुखान्निष्क्रामति। मातुरात्मनश्च वेदनामतुलां जनयन् ॥२६॥

भावार्थ—करुणाजनक शब्दों में रुदन करता हुआ जीव योनिद्वार से बाहर निकलता है। वह माता को अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करता है तथा स्वयं भी पीड़ा अनुभव करता है।

गब्भघरयम्मि जीवो, कुंभीपागम्मि णरयसंकासे। वुत्थो असिज्झमज्झे, असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥२७॥

छाया—गर्भगृहे जीवः, कुम्भीपाके नरकसंकाशे। स्थितोऽमेध्यमध्ये, अशुचिप्रभवे अशुचिके ॥२७॥

भावार्थ—गर्भ रूप गृह कुम्भीपाक नरक के समान है। वह स्वयं अशुचि है और अशुचि को ही उत्पन्न करता है। उसमें जीव अपवित्र पदार्थों के मध्य में निवास करता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पित्तस्स य सिंभस्स य, सुक्कस्स य सोणियस्स चि य मज्झे। मुत्तस्स पुरीसस्स य, जायइ जह वच्चकिमिउव्व ॥२८॥

छाया—पित्तस्य च श्लेष्मणश्च, शुक्रस्य च शोणितस्य च मध्ये। मूत्रस्य च पुरीषस्य च, जायते वर्चस्वकृमिरिव ॥२८॥

भावार्थ—जैसे उदर में स्थित विष्ठा में कीड़े उत्पन्न होते हैं उसी तरह यह जीव पित्त, कफ, शुक्र, शोणित, मूत्र और विष्ठा के मध्य में उत्पन्न होता है।

तं दाणिं सोयकरणं, केरिसयं होइ तस्स जीवस्स। सुक्करुहिरागराओ जस्सुप्पत्ती सरीरस्स ॥२९॥

छाया—तदिदानी शौच करणं, कीदृशं भवति तस्य जीवस्य। शुक्र रुधिराकरात् यस्योत्पत्तिः शरीरस्य ॥२९॥

भावार्थ—जिसकी उत्पत्ति शुक्र और रक्त के भण्डार से हुई है उस शरीर की शुद्धि किस तरह की जा सकती है ?

एयारिसे सरीरे, कलमलभरिए अमिज्झ संभूए। णियगं विगणिज्जंतं, सोयमयं केरिसं तस्स ॥३०॥

छाया—एतादृशे शरीरे, कलमलभृते अमेध्य संभूते। निजके जुगुप्सनीये शौचमदं कीदृशं तस्य ॥३०॥

भावार्थ—यह शरीर मल से परिपूर्ण है और अपवित्र पदार्थों से उत्पन्न हुआ है। इसमें खुद अपने को और दूसरे को भी घृणा उत्पन्न होती है फिर इसके शुद्ध होने का गर्व करना कैसा ?।

आउसो ! एवं जायस्स जंतुस्स कमेण दस दसा एवमाहिज्जंति। तंजहा–

बाला, किड्डा, मंदा, बला य पण्णा य हायणि पवंचा। पब्भारा मुम्मुही, सायणी दसमा य कालदसा ॥३१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—आयुष्मन् ! एवं जातस्य जन्तोः क्रमेण दश दशाः एवमाख्यायन्ते । तद्यथाः—

बाला, क्रीडा, मन्दा, बला च प्रज्ञा, हापनी, प्रपञ्चा । प्राग्भारा, मुन्मुखी, शायिनी दशमी च कालदशा ॥३१॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! पहले कहे अनुसार गर्भ से उत्पन्न जीव की क्रमशः दश दशाएं होती हैं उनके नाम ये हैं— (१) बाला (२) क्रीडा (३) मन्दा (४) बला (५) प्रज्ञा (६) हापनी (७) प्रपञ्चा (८) प्राग्भारा (९) मुन्मुखी (१०) और शायिनी । ये प्रत्येक दशाएं दश दश वर्ष की होती हैं ।

जायमित्तस्स जंतुस्य, जा सा पढमिया दसा । न तत्थ सुहं दुक्खं वा, न हु जाणंति बालया ॥ ३२ ॥

छाया—जातमात्रस्य जन्तोर्यासा प्राथमिकी दशा । न तत्र सुखं दुःखं वा, न हि जानन्ति बालकाः ॥३२॥

भावार्थ—उत्पन्न होने के समय से लेकर दश वर्ष पर्यन्त जो जीव की पहली दशा होती है उसमें बालक अपने तथा दूसरे के सुख दुःख को नहीं जानते हैं । परन्तु जातिस्मरण ज्ञान जिनको होता है वे जानते हैं ।

बीईयं य दसं पत्तो, णाणा कीलाहिं कीडइ । ण य से काम भोगेसु, तिव्वा उप्पज्जई रई ॥३३॥

छाया—द्वितीयाञ्च दशां प्राप्तो, नानाक्रीडाभिः क्रीड़ति । न च तस्य काम भोगेषु, तीव्रोत्पद्यते रतिः ॥३३॥

भावार्थ—जीव जब दूसरी अवस्था को प्राप्त होता है तब नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में आसक्त होकर क्रीड़ा करता है । उस समय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द रूप विषयों के भोग की इच्छा उसकी तीव्र नहीं होती है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तइयं य दसं पत्तो, पंच काम गुणे णरो । समत्थो भुंजिउं भोए, जइ से अत्थि घरे धुवा ॥३४॥

छाया—तृतीयाञ्च दशां प्राप्तः, पञ्च कामगुणान्नरः । समर्थो भोक्तुं भोगान्, यदि तस्यास्ति गृहे ध्रुवा ॥३४॥

भावार्थ—तृतीय अवस्था को प्राप्त होकर जीव रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाँच ही विषयों में आसक्त होता है और वह इन्हें भोग सकता है यदि उसके घर में समृद्धि विद्यमान हो ।

चउत्थी उ बला णाम, जं णरो दसमस्सिओ । समत्थो बलं दरिसेउं, जइ भवे निरुवद्दवो ॥३५॥

छाया—चतुर्थी तु बला नाम, यां नरो दशा माश्रितः । समर्थो बलं दर्शयितुं, यदि भवेन्निरुपद्रवः ॥३५॥

भावार्थ—चौथी दशा का का नाम बला है, उसको प्राप्त होकर जीव अपना बल दूसरे को दिखा सकता है, यदि वह नीरोग हो ।

पंचमी उ दसं पत्तो, आणुपुव्वीए जो णरो । समत्थोऽत्थं विचिंतेउं, कुडुबं चाभिगच्छइ ॥३६॥

छाया—पञ्चमीं तु दशां प्राप्तः, आनुपूर्व्या यो नरः । समर्थोऽर्थं विचिन्तयितुं, कुटुम्बञ्चाभिगच्छति ॥३६॥

भावार्थ—मनुष्य पाचवीं दशा को प्राप्त होकर द्रव्य की चिन्ता करता है और कुटुम्ब की चिन्ता में निमग्न होता है ।

छट्ठी उ हापणी णामा, जं णरो दसमस्सिओ । विरज्जइ उ कामेसुं, इंदिएसु य हायइ ॥३७॥

छाया—षष्ठी तु हापनी नाम्नी, यां नरो दशामाश्रितः । विरज्यते च कामेषु, इन्द्रियेषु च हीयते ।

भावार्थ—छठी दशा का नाम हापनी है । इस दशा को प्राप्त होकर मनुष्य विषय भोग से विरक्त हो जाता है और उसकी इन्द्रियाँ भी बलहीन हो जाती हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सत्तमी य पवंचा उ, जं नरो दसमस्सिओ । निच्छुभइ चिक्कणं खेलं, खासई य खणे खणे ॥३८॥

छाया—सप्तमी च प्रपञ्चा तु, यां नरो दशा माश्रितः । निक्षिपति चिक्वणं श्लेष्माणं, कासते च क्षणे क्षणे ॥३८॥

भावार्थ—सातवीं दशा प्रपञ्चा कहलाती है । इसके आने पर मनुष्य चिकना कफ मुख से बाहर फेंकता रहता है और क्षण क्षण में खांसता रहता है ।

संकुइयवली चम्मो, संपत्तो अट्ठमीं दसं । नारीणं य अणिट्ठो य, जराए परिणामिओ ॥३९॥

छाया—सङ्कुचित वलिचर्मा, सम्प्राप्तोऽष्टमीं दशां । नारीणाञ्चानिष्टश्च, जरया परिणामितः ॥३९॥

भावार्थ—यह मनुष्य जब आठवीं दशा को प्राप्त होता है तब उसके शरीर का चमड़ा संकुचित हो जाता है और अत्यन्त वृद्धता को प्राप्त होकर स्त्रियों का अप्रिय होजाता है ।

नवमी मुम्मुही नाम, जं नरो दसमस्सिओ । जराघरे विणस्संते, जीवो वसइ अकामओ ॥४०॥

छाया—नवमी मुन्मुखी नाम्नी, यां नरो दशा माश्रितः । जरागृहे विनश्यति, जीवो वसत्यकामतः ॥४०॥

भावार्थ—नवमी दशा का नाम मुन्मुखी है । इस दशा को प्राप्त होकर जीव विषय की इच्छा से रहित हो जाता है और शरीर वृद्धता का घर होकर नष्ट प्राय हो जाता है ।

हीण भिण्णसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ । दुब्बलो दुक्खिओ सुयई, संपत्तो दसमीं दसं ॥४१॥

छाया—हीन भिन्नस्वरो दीनो, विपरीतो विचित्रकः । दुर्बलो दुःखितः स्वपिति, सम्प्राप्तो दशमीं दशाम् ॥४१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—दशवीं दशा के आने पर मनुष्य का स्वर, हीन और दूसरी तरह का हो जाता है। वह दीन बन जाता है तथा उसका चित्त भी पहले के समान नहीं रहता। वह दुर्बल और दुःखी होकर सोता रहता है।

दसगस्स उवक्खेवो, वीसइवरिसो उ गिण्हई विज्जं। भोगा य तीसगस्स य, चत्तालीसस्स विण्णाणं ॥४२॥

छाया—दशकस्योपक्षेपः, विंशतिवर्षस्तु गृह्णाति विद्यां। भोगाश्च त्रिंशत्कस्य, चत्वारिंशत्कस्य विज्ञानम् ॥४२॥

भावार्थ—मनुष्य जब दश वर्ष का होता है तब उसका मुण्डन एवं उस अवस्था के योग्य दूसरे उत्सव आदि किये जाते हैं। जब वह बीस वर्ष का होता है तब विद्या का ग्रहण करता है एवं तीस वर्ष का होने पर भोगों को भोगता है और चालीस वर्ष का होकर विज्ञान से युक्त होता है।

पण्णासगस्स चक्खू हायइ, सट्ठिकयस्स बाहुबलं। भोगा य सत्तरिस्स य, असीइगस्स य विण्णाणं ॥४३॥

छाया—पञ्चाशत्कस्य चक्षुर्हीयते, षष्टिकस्य बाहुबलं। भोगाश्च सप्ततिकस्य, अशीतिकस्य च विज्ञानम् ॥४३॥

भावार्थ—मनुष्य जब पचास वर्ष का होता है तब उसकी दृष्टि कमजोर हो जाती है और जब साठ वर्ष का होता है तब उसका बाहुबल घट जाता है। जब वह सत्तर वर्ष का होता है तब भोग भोगने की शक्ति जाती रहती है और अस्सी वर्ष का होने पर ज्ञान शक्ति अल्प हो जाती है।

नउई नमइ सरीरं, वाससए जीविअं चयइ। कित्तिओ ऽत्थ सुहो भागो, दुहो भागो य कित्तिओ ॥४४॥

छाया—नवतिकस्य नमति शरीरं, वर्ष शते जीवितं त्यजति। कीर्तितोऽत्र सुखभागः, दुःखभागश्च कीर्तितः ॥४४॥

भावार्थ—यह मनुष्य जब नब्बे वर्ष का होता है तब उसका शरीर नम जाता है यानी झुक जाता है और सौ वर्ष का होकर मर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाता है। इस सौ वर्ष की आयु में कितना भाग सुख का है और कितना दुःख का है यह बतला दिया गया है।

जो वाससयं जीवइ, सुही भोगे पभुंजइ। तस्सावि सेविउं सेओ, धम्मो य जिणदेसिओ ॥४५॥

छाया—यः वर्षशतं जीवति, सुखी भोगान् भुङ्क्ते। तस्यापि सेवितुं श्रेयः, धर्मश्च जिनदेशितः ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है और सुखी है तथा भोगों को भोगता है उसको भी जिनभाषित धर्म का सेवन करना ही कल्याणकारक है।

किं पुण सपच्चवाए, जो नरो निच्चदुक्खिओ। सुट्ठुयरं तेण कायव्वो, धम्मो य जिणदेसिओ ॥४६॥

छाया—किं पुनः सप्रत्यवाये, यो नरो नित्य दुःखितः। सुष्ठुतरस्तेन कर्त्तव्यः, धर्मश्च जिनदेशितः ॥४६॥

भावार्थ—जिनकी आयु कष्ट से पूर्ण है तथा जो सदा दुःखी रहता है उसके लिये तो कहना ही क्या है? उसको तो भलीभाँति जिनभाषित धर्म का आचरण करना ही चाहिये।

णंदमाणो चरे धम्मं, वरं मे लट्ठतरं भवे। अणंदमाणो वि चरे धम्मं, मा मे पावयरं भवे ॥४७॥

छाया—नन्दमानश्चरेद्धर्मं, वरं मे लष्टतरं भवेत्। अनन्दवपि चरेद्धर्मं, मा मे पापतरं भवेत् ॥४७॥

भावार्थ—सांसारिक सुख का उपभोग करता हुआ भी मनुष्य कल्याणकारी जिनभाषित धर्म का आरचण करे। वह यह विचार करे कि—यह धर्म आचरण मुझको इस भव में तथा परभव में सुख देगा। एवं दुःख भोगते समय भी मनुष्य धर्म का आचरण करे। वह यह विचार करे कि—मैंने धर्म का आचरण नहीं किया था इसलिये मुझको यह दुःख भोगना पड़ता है। अब यदि धर्म नहीं करूँगा तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आगे चलकर फिर वहाँ दुःख भोगना पड़ेगा।

णवि जाई कुलं वावि, विज्जा वावि सुसिक्खिया। तारे नरं व नारीं वा, सव्वं पुण्णेहिं वड्ढई ॥४८॥

छाया—नापि जातिः कुलं वापि, विद्या वापि सुशिक्षिता। तारयेन्नरं वा नारीं वा, सर्वं पुण्येन वर्धते ॥४८॥

भावार्थ—जाति, कुल तथा परिश्रम के साथ सीखी हुई विद्या ये कोई भी नर और नारी को संसार से पार करने में समर्थ नहीं होते किन्तु सब प्रकार का सुख पुण्य से प्राप्त होता है।

पुण्णेहिं हीयमाणेहिं, पुरिसागारो वि हायई। पुण्णेहिं वड्ढमाणेहिं पुरिसागारो वि वड्ढई ॥४९॥

छाया—पुण्यैर्हीयमानैः, पुरुषकारोऽपि हीयते। पुण्यैर्वर्धमानैः, पुरुषकारोऽपि वर्धते ॥४९॥

भावार्थ—पुण्य के क्षय होने पर यश, कीर्ति, लक्ष्मी और पुरुष का अभिमान ये सभी नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की वृद्धि होने पर इन सब की वृद्धि होती है।

पुण्णाइं खलु आउसो! किच्चाइं करणिज्जाइं पीइकराइं वण्णकराइं धण्णकराइं कित्तिकराइं, णो य खलु आउसो! एवं चिंतियव्वं—एस्संति खलु बहवे समया, आवलिया, खणा, आणपाणू, थोवा, लवा, मुहुत्ता, दिवसा, अहोरत्ता, पक्खा, मासा, रिऊ, अयणा, संवच्छरा, जुग्गा, वाससया, वाससहस्सा, वाससयसहस्सा, वासकोडीओ, वासकोडाकोडीओ। जत्थ णं अम्हे बहूइं सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं पडिवज्जिस्सामो, पट्ठविस्सामो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करिस्सामो ता किमत्थं आउसो ! नो एवं चिंतेयव्वं भवइ ? अंतरायबहुले खलु अयं जीविए इमे बहवे वाइयपित्तिय सिंभिय संनिवाइया विविहा रोगायंका फुसंति जीवियं ॥ सूत्रं १३ ॥

छाया—पुण्यानि खलु आयुष्मन् ! कृत्यानि करणीयानि प्रीतिकराणि वर्णकराणि धनकराणि कीर्तिकराणि । न च खलु आयुष्मन् ! एवं चिन्तितव्यं-एष्यन्ति खलु बहवः समया आवलिकाः क्षणाः आणप्राणाः स्तोकाः लवा मुहूर्त्ताः दिवसाः अहोरात्राः पक्षाः मासाः ऋतवः अयनाः संवत्सराः युगाः वर्षशतं वर्षसहस्रं वर्षशतसहस्रं वर्षकोटिः वर्षकोटिकोटिः । यत्र वयं बहूनि शीलानि व्रतानि गुणान् विरमणानि प्रत्याख्यानानि पौषधोपवासान् प्रतिपत्स्यामहे प्रस्थापयिष्यामः करिष्यामः । तत् किमर्थं मायुष्मन् ! नो एवं चिन्तितव्यं भवति ? अन्तरायबहुलं खल्वेतज्जीवितं इमे बहवः वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपातिकाः विविधाः रोगातङ्काः स्पृशन्ति जीवितम् ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! पुण्य कार्य्य करना चाहिये, वह करने योग्य है । पुण्य करने से मित्र आदि के साथ प्रेम की वृद्धि होती है । जगत् में प्रशंसा होती है, धन की वृद्धि होती है, कीर्ति होती है । यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि—बहुत समय, आवलिका, क्षण, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, कोटि वर्ष, कोटि-कोटि वर्ष आने वाले हैं, उनमें हम बहुत शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास अङ्गीकार कर लेंगे और आचरण कर लेंगे । हे आयुष्मन ! ऐसा नहीं सोचने का कारण यह है कि—यह जीवन विघ्नों से भरा हुआ है । ये वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले रोग सभी मनुष्यों को उत्पन्न होते रहते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आसीय खलु आउसो ! पुव्विं मणुया ववगयरोगायंका बहुवाससयसहस्सजीविणो, तंजहा—जुयलधम्मिया, अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणा विज्जाहरा। तेणं मणुया अणइवरसोमचारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खण-धरा सुजायसव्वंगसुंदरा रत्तुप्पलपउम कर चरण कोमलंगुलितला नगनगरमगर सागरचक्कंकधरंकलक्खणंकियतला सुप्पइट्ठियकुम्मचारुचलणा आणुपुव्विं सुजायपीवरंगुलिया उन्नयतणुतंबनिद्धनहा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणी कुरुविं-दावत्त वट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गनिमग्ग गूढजाणु गयस सण सुजायसन्निभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासियगई सुजाय-वरतुरय गुज्झ देसा आइण्ण हयव्व निरुवलेवा पमुइयवरतुरय सीह अइरेगवट्टियकडी साहय सोणंद मुसलदप्पण निगरिय-वरकणगच्छरु सरिसवरवइरवलिय मज्झा गंगावत्त पयाहिणावत्त तरंगभंगुर रविकिरण तरुणबोहियबिकोसायंत पउमगंभी-रवियडनाभी उजुयसमसहिय सुजायजायजच्च तणुकसिण निद्ध आइज्जलडह सुकुमाल मउयरमणिज्जरोमराई झसविहग-सुजायपीण कुच्छीझसोयरा पउमवियडनाभी संगयपासा सन्नयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाईयपीणरईयपासा अकरंडुयकणय रुयगनिम्मल सुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थबत्तीसलक्खणधरा कणगसिलायलुज्जल पसत्थ समतलउव-चियविच्छिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छं कियवच्छा पुरवरफलिहवट्टिय भुया भुयगीसरविउल भोग आयाणफलिह उच्छूढदीहबाहू जुगसंनिभ पीणरइय पीवरपउट्ठा संठियउवचिय घणथिरसुबद्ध सुवट्टसुसिलिट्ठ लट्ठपव्वसंधी रत्ततलोवचिय मउय मंसल सुजाय लक्खणपसत्थ अच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजाय कोमलवरंगुलिया तंबतलिण सुइरुइरनिद्धनक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा सुत्थियपाणिलेहा ससिरविसंखचक्कसुत्थियसुविभत्तसुविरइयपाणिलेहा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वरमहिसवराह सीह सद्दूल उसभनागवर विउल उन्नय मउपक्खंधा चउरंगुल सुप्पमाण कंबुवर सरिस गीवा अवट्ठिय-
सुविभत्तचित्त मंसू मंसल संठियपसत्थ सद्दूल विउल हणुया ओयविय सिलप्पवाल बिंबफल सन्निभाधरुट्ठा पंडुर ससिसगल-
विमल निम्मल संखगोक्खीर कुंद दगरयमणालियाधवलदंतसेढी अखंड दंता अफुडियदंता अविरलदंता सुणिद्धदंता
सुजायदंता एगदंता सेढीविव अणेगदंता हुयवहनिद्धंतधोय तत्त तवणिज्ज रत्ततलतालुजीहा सारसनवथणिय महुगभीर
कुंचनिग्घोसदुंदुहिसरा गरुलायय उज्जुतुंगनासा अवदारियपुंडरीयवयणा कोकासियधवलपुंडरीयपत्तलच्छा आनामिय-
चावरुइल किण्ह चिहुरराई सुसंठिय संगय आयय सुजाय भुमया अल्लीणपमाण जुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसल कवोल-
देसभागा अइरुग्गाय समग्गसुनिद्ध चंदद्ध संठियनिडाला उडुवइपडिपुन्नसोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणनिचिय
सुबद्धलक्खणुन्नयकूडागारनिभ निरुवमपिंडियग्गसिरा हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्ज केसंतकेसभूमी सामली बोंडघण-
निचियच्छोडिय मिउविसय सुहुमलक्खण पसत्थ सुगंधि सुंदरभुयमोयगभिंगनीलकज्जल पहट्ठभमरगणनिद्धनिउरंबनिचिय-
कुंचिय पयाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजण गुणोववेया माणुम्माणपमाण पडिपुन्न सुजायसव्वंगसुंदररंगा ससिसोमागार-
कंतपियदंसणा सब्भावसिंगारचारुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तेणं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा
हंसस्सरा कोंचस्सरा णंदिस्सरा णंदिघोसा सीहस्सरा सीह घोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सर घोसा अणुलोमवाउ
वेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणीप्फोसपिट्ठंतरोरुपरिणया पउमुप्पल सुगंधिसरिसनीसास सुरभिवयणा छवी निरायंका
उत्तमपसत्था अइसेसनिरुवमतणू जल्लमल्लकलंक सेयरयदोसवज्जियसरीरनिरुवलेवा, छायाउज्जोवियंगमंगा, वज्जरिसह-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाराय संघयणा समचउरंस संठाण संठिया छधणुसहस्साइं उड्ढं उच्चतेणं पण्णत्ता, तेणं मणुया दो छप्पण्णगपिट्ठिकरंडयसया पण्णत्ता। समणाउसो! तेणं मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसंता पगइपयणुकोह माणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दया विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा असिमसिकिसि वाणिज्जविवज्जिया विडिमंतरनिवासिणो इच्छियकामकामिणो गेहागार रुक्खकयनिलया पुढविपुप्फफलाहारा तेणं मणुयगणा पण्णत्ता॥ (सूत्रं १४)

छाया—आसँश्च खल्वायुष्मन्! पूर्वं मनुजा व्यपगतरोगातङ्काः बहुवर्षशतसहस्रजीविनः तद्यथा—युगलधार्मिकाः—अर्हन्तो वा चक्रवर्तिनो वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणाः विद्याधराः। ते मनुजाः अनतिवरसौम्यचारुरूपाः भोगोत्तमाः भोगलक्षणधराः सुजातसर्वाङ्गसुन्दराः रक्तोत्पलपद्म कर चरणकोमलाङ्गुलितलाः नगनगरचक्रङ्कधराङ्कलक्षणाङ्किततलाः सुप्रतिष्ठित कूर्मचारुचरणाः आनुपूर्व्या सुजातपीवराङ्गुलिकाः उन्नततनुताम्रस्निग्धनखाः संस्थितसुश्लिष्टगूढगुल्फा एणी कुरुविन्दवत्त वृत्तानुपूर्वजङ्घा समुद्गनिमग्न गूढजानवः गजश्वसन सुजात सन्निभोरवः वरवारणमत्ततुल्यविक्रमविलासितगतयः सुजातवरतुरगगुह्यदेशाः आकीर्णहया इव निरुपलेपाः प्रमुदितवरतुरगसिंहातिरेक वर्तितकटय संहत सोनन्दमुशलदर्पण निगीर्णवरकनकत्सरुसदृश वरवज्रवलितमध्या गङ्गावर्त प्रदक्षिणावर्त तरङ्गभङ्गुर रवि किरण तरुण बोधित विकोशायत पद्मगम्भीर विकट नाभयः ऋजुकसम संहित सुजात जात्य तनु कृष्णस्निग्धदेयलटह सुकुमारमृदुक रमणीय रोमराजयः झष विहग सुजातपीनकृक्षयः झषोदराः पद्मविकटनाभय सन्नतपार्श्वाः सचत पार्श्वाः सुन्दरपार्श्वाः सुजातपार्श्वाः मित मातृकपीन रतिदपार्श्वाः अकरण्डुक कनकरुचक निर्मल सुजातनिरुपहत देहधारिणः प्रशस्तद्वात्रिंशल्लक्षणधराः कनकशिलातलोज्ज्वल समतलोपचितविच्छिन्न पृथुलवक्षसः श्रीवत्साङ्कितवक्षसः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरवरपरिघावर्तितभुजाः भुजगेश्वरविपुल भोगादानपरिघावत्तिप्तदीर्घबाहवः युगसन्निभपीनरतिद पीवर प्रकोष्ठाः संस्थितोपचित घनस्थिर सुबद्ध सुवृत्तसुश्लिष्ट लष्टपर्वसन्धयः रक्ततलोपचित मृदुकमांसल सुजातलक्षणप्रशस्ताच्छिद्रजालपाणयः पीवरवर्तितसुजात कोमल वराङ्गुलिकाः ताम्रतलिनशुचिरुचिर स्निग्धनखाः चन्द्रपाणिरेखाः सूर्य्यपाणिरेखाः शंखपाणिरेखाः चक्रपाणिरेखाः सुस्थितपाणिरेखाः शशिरविशंखचक्र सुस्थित सुविभक्त सुविरचितपाणिरेखाः वरमहिषवराहसिंह शार्दूल वृषभ नागवरविपुलोन्नत मृदुकस्कन्धाः चतुरङ्गुल सुप्रमाणकंबुवरसदृशग्रीवाः अवस्थितसुविभक्तचित्रश्मश्रवः मांसलसंस्थित प्रशस्त शार्दूल हनवः परिकर्मितशिलाप्रवालबिम्लफल सदृशाधरोष्ठाः पाण्डुरशशिकलविमल निर्मलशंख गोक्षीरकुन्द दकरजोऽनाविल धवलदन्तश्रेणयः अखण्डदन्ताः अस्फुटितदन्ताः सुस्निग्धदन्ताः सुजातदन्ता एकदन्ताः श्रेणय इव अनेकदन्ताः हुतवहनिर्ध्मात धौत तपनीयरक्त तलतालु जिह्वाः सारसनव स्तनित मधुर गम्भीर क्रौञ्च निर्घोषदुन्दुभिस्वराः गरुडायतर्जतुङ्गनासिकाः अवदारित पुण्डरीकवदनाः, विकसितधवलपुण्डरीक पत्रलाक्षाः अवनामित चापरुचिरकृष्णाचिकुरराजि सुसंस्थितसङ्गतायत सुजात भ्रुवः आलीन-प्रमाणयुक्तश्रवणाः सुश्रवणाः पीनसमांसल कपोलभागाः अचिरोद्गत समग्र सुस्निग्धचन्द्रार्धसंस्थितललाटाः उडुपति प्रतिपूर्णसौम्यवदनाः छत्राकारोत्तमाङ्गदेशाः घननिचितसुबद्ध लक्षणोन्नतकूटागारनिभनिरुपमपिण्डिकाग्रशिरसः हुतवहनिर्ध्मात धौत तप्ततपनीय केशान्तकेशभूमयः शाल्मलीबोण्ड घननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्त सूक्ष्मलक्षण सुगन्धि सुन्दरभुजमोचकभृङ्गनील कज्जल प्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकुरम्ब निचितप्रदक्षिणावर्तमूर्ध शिरोजाः लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः मानोन्मानप्रमाण प्रतिपूर्ण सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः शशिसौम्याकार कान्तप्रियदर्शनाः स्वभावशृङ्गारचारुरूपाः प्रासादीयाः दर्शनीयाः अभिरूपाः प्रतिरूपा ते मनुजा ओघस्वराः मेघस्वराः हंसस्वराः क्रौञ्चस्वराः नन्दिस्वराः नन्दिघोषाः सिंहस्वराः सिंहघोषाः मञ्जुस्वराः मञ्जुघोषाः सुस्वराः सुस्वरघोषाः अनुलोमवायुवेगाः कङ्कग्रहणयः कपोतपरिणामाः शकुनिप्फोस पृष्ठान्तरोरु परिणताः पद्मोत्पलसुगन्ध सदृशनिश्वास सुरभिवदनाः छविमन्तः निरातङ्काः उत्तमप्रशस्ताः अतिशेषनिरुपमतनवः जल्लमलकलङ्कस्वेद रजोदोष-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वर्जिततनिरुलेपाः छायोद्योतिताङ्गाङ्गाः वज्रऋषभनाराचसंहननाः समचतुरस्र संस्थान संस्थिताः षड्धनुः सहस्राण्यूर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः ते मनुजाः द्विषट्पञ्चाशत् पृष्टकरण्डकशताः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् ! ते मनुजाः प्रकृतिभद्रकाः प्रकृतिविनीताः प्रकृत्युपशान्ताः प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः मृदुमार्दव सम्पन्नाः आलीनाः भद्रकाः विनीताः अल्पेच्छाः असन्निधि सञ्चयाः अचरडाः असिमषिकृषिवाणिज्य विवर्जिताः विडिमान्तरनिवासिनः ईप्सितकामकामिनः गेहाकारवृक्ष कृतनिलयाः पृथिवीपुष्पफलाहाराः ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ताः ॥

भावार्थ—हे आयुष्मन श्रमण ! प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आरा में मनुष्य नीरोग होते थे। उनको न तो कभी ज्वर आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती थीं और न कभी तत्काल प्राणों को हरण करने वाले शूल आदि आतङ्क ही उत्पन्न होते थे। वे कई लाख वर्ष तक जीते रहते थे। जैसे कि जुगलिये, तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव, चारण और विद्याधर। इन मनुष्यों का रूप बहुत ही मनोहर तथा दृष्टि को लोभित करने वाला था। ये लोग उत्तमोत्तम भोगों को भोगने वाले होते थे। इनके अङ्गों में भोगों की सूचना देने वाले स्वस्तिक आदि शुभ लक्षण विद्यमान होते थे। इनके सभी अङ्ग सुन्दरता से उत्पन्न और परम सुन्दर होते थे। इनके हाथ और पैर की अङ्गुलियाँ लाल कमल की तरह रक्तवर्ण और कोमल होती थीं। इनके हाथ और पैर के तलवे कमल के समान कोमल और पर्वत, नगर, मछली, समुद्र, चक्र, चन्द्रमा और सूर्य के समान आकार वाली रेखाओं से युक्त होते थे। इनके चरण कछुए की तरह बराबर और क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते थे। इनके पैर की अङ्गुलियाँ सुन्दर और स्थूल होती थीं इनके नख रक्तवर्ण उन्नत सूक्ष्म और चमकीले होते थे। इनके पैर के गुल्फ छिपे हुए, उत्तम आकृति वाले और सुन्दरता पूर्ण जमे हुए होते थे। जैसे हरिणी की जङ्घा और कुरुविन्द नामक तृण क्रमशः स्थूल और गोल होते हैं उसी तरह इसकी जङ्घायें गोल और क्रमशः स्थूल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होती थीं। इनके घुटने समुद्गक पक्षी के घुटनों की तरह पुष्ट और अन्दर घुसे हुए होने के कारण लक्षित नहीं होते थे। इनके उरु हाथी की सूँड की तरह सुन्दर और स्थूल होते थे। ये लोग गजराज की तरह पराक्रम के सहित सविलास गमन करते थे। इनकी शिश्न इन्द्रिय सुन्दर घोड़े की इन्द्रिय के समान होती थी। जैसे जातिवान अश्व मल से उपलिप्त नहीं होता है उसी तरह ये लोग मल के लेप से रहित होते थे। प्रसन्न घोड़ा एवं सिंह की कटि से भी बढ़कर इनकी कटि वर्तुल होती थी। जैसे त्रिकाष्ठिका का मध्य भाग तथा मुशल, दर्पण और सोने की बनी हुई तलवार की मुष्टि पतली होती है उसी तरह इनका उदरप्रदेश पतला होता था और उसमें तीन रेखाएँ होती थीं। इनकी नाभि गङ्गा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त और तरङ्ग की तरह रेखाओं से युक्त एवं सूर्य्य की किरणों द्वारा तत्काल विकसित कमल की तरह सुन्दर और गम्भीर होती थी। इनके शरीर की रोम श्रेणी समान, घन, सुन्दर, सूक्ष्म, काली, सुकुमार और मनोहर होती थी। इनका उदर मछली और पक्षी के उदर की तरह सुन्दर और पुष्ट होता था। इनकी नाभि कमल के समान गहरी होती थी। इनके पार्श्वभाग युक्त, नम्र, सुन्दर, परिमाणयुक्त पुष्ट और आनन्द दायक होते थे। इनका शरीर मांस से पूर्ण होने के कारण पीठ की हड्डी से रहित सा प्रतीत होता था। और सुवर्ण के समान गौर एवं मलरहित तथा रोग आदि के कारण उत्पन्न विकारों से रहित सुन्दर होता था। इनके शरीर में बत्तीस प्रकार के उत्तम लक्षण विद्यमान होते थे। इनकी छाती सोने की शिला के समान प्रशस्त समतल पुष्ट और चौड़ी होती थी तथा उसके ऊपर श्रीवत्स का चिह्न होता था। नगर की अर्गला के समान लम्बी और वर्तुल इनकी भुजाएँ होती थीं। वह सर्पराज के शरीर की तरह दीर्घ तथा अपने स्थान से निकाल कर रखे हुए परिघ दण्ड के समान विशाल और सुन्दर होती थीं। इनके हाथ की कलाई यूप की तरह मोटी, बड़ी और सुन्दर होती थी। इनकी भुजाओं की सन्धियाँ मनोहर आकृति वाली स्नायुओं से दृढ बँधी हुई गोल घन और मनोज्ञ होती थीं। इनके हाथ के तलवे रक्त वर्ण पुष्ट,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोमल और शुभ लक्षणों को धारण करने वाले छिद्ररहित और जाल के समान तथा सुन्दर होते थे। इनकी अङ्गुलियाँ मोटी, वर्तुल, कोमल उत्तम और सुन्दर होती थीं। इनके नख रक्तवर्ण चमकीले समतल निर्मल और सुन्दर होते थे। इनके हाथ में चन्द्रमा के आकार वाली रेखा होती थी। तथा उसमें सूर्य्य, शंख, स्वस्तिक और चक्र के आकार की रेखा भी होती थी। एवं उसमें चन्द्रमा, सूर्य्य, शंख स्वस्तिक और चक्र की रेखायें होती थीं। इनके हाथ की सभी रेखायें अलग अलग स्पष्ट बनी हुई होती थीं। इनके स्कन्ध, उत्तम भैंसा, सूअर, सिंह, व्याघ्र, साँड, श्रेष्ठ हाथी के कन्धे के समान उन्नत और कोमल होते थे। इन के कण्ठ में तीन रेखाएं होती थीं। और वह कण्ठ अपनी अङ्गुली के प्रमाण से चार अङ्गुल का होता था तथा उत्तम शंख के समान उसकी आकृति होती थी। उनकी मूँछ, न तो बड़ी और न छोटी ही होती थी। किन्तु उचित प्रमाण युक्त सुन्दर और अलग अलग रहने वाले केशों से भरी हुई होती थी। उनकी ठुड्डी सिंह की ठुड्डी के समान सुन्दर आकृति वाली और पुष्ट होती थी। उनका अधरोष्ठ साफ किये हुए मूँगे की तरह रक्त होता था। इनके दाँतों की श्रेणी चन्द्रमा के खण्ड की तरह निर्मल एवं मल रहित शंख, गाय के दूध का फेन, कुन्द पुष्प और कमलिनी के मूल के समान शुक्ल होती थीं। इनके दाँत खण्ड रहित और रेखा हीन घन और अरूक्ष तथा सुन्दर होते थे। इनके दाँतों की श्रेणी एक एक दाँतों की होती थी। दांत के पीछे दूसरा दांत नहीं होता था। इनके दांत पूरे बत्तीस होते थे। इनके दांतों की श्रेणी एक आकार की होती थी। और दांतो का सङ्गठन इतना घन होता था कि—उनका परस्पर पार्थक्य लक्षित नहीं होता था। इनकी जीभ और तालु अग्नि में तपाकर निर्मल किये हुए उष्ण सुवर्ण की तरह रक्त वर्ण होते थे। इनके कण्ठ का शब्द सारस पक्षी के शब्द की तरह मधुर और नवीन मेघ के शब्द की तरह गम्भीर एवं क्रोञ्च पक्षी तथा दुन्दुभि के शब्द की तरह गम्भीर और मधुर होता था। इनकी नासिका गरुड़ की नासिका के समान सीधी और ऊँची होती थी। इनका मुख सूर्य्य की किरणों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वारा विकसित श्वेत कमल के समान सुन्दर और रोमावली से युक्त होता था। इनकी भौहें नम्र धनुष के आकार की होती थीं और उनके केश काले और सुन्दर श्रेणी में स्थित होते थे। वे दीर्घ और सुनिष्पन्न होते थे। इनके कान उचित प्रमाण वाले यानी न तो बहुत बड़े और न बहुत छोटे होते थे। वे कानों के द्वारा भली भाँति शब्दों को सुन सकते थे। इनके गाल मोटे होते थे। इनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान विस्तृत और सुन्दर होता था। इनका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूर्ण और सुन्दर होता था। इनका शिर छत्ता के समान वर्तुल होता था। इनके शिर का अग्रभाग लोहे के मुद्गर की तरह घन और स्नायुओं से मजबूत बँधा हुआ शुभलक्षणों से पूर्ण कूटागार के तुल्य उपमारहित और वर्तुल होता था। इनके मस्तक का चर्म, अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की तरह रक्त वर्ण होता था। इनके शिर के केश शाल्मली वृक्ष के फल की तरह छोटे और घन होते थे तथा कोमल, निर्मल, सूक्ष्म, चिकने, अत्यन्त सुगन्ध, सुन्दर और लक्षण युक्त होते थे। एवं भुजमोचक रत्न, भृङ्ग, नीलमणि, कज्जल और प्रसन्न भ्रमर की तरह वे काले होते थे। वे परस्पर जुड़े हुए कुञ्च वक्र और दाहिनी ओर फिरे हुए होते थे। वे पुरुष स्वस्तिक आदि शुभ लक्षण तथा मष तिल आदि व्यञ्जन एवं क्षमा आदि गुणों से युक्त होते थे। उनके शरीर तथा अङ्गों के मान और उन्मान पूर्ण रूप में होते थे। तथा वे जन्म सम्बन्धी दोषों से वर्जित होते थे। उनकी आकृति सौम्य होती थी और उनके दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता था। उनका वेष स्वभाव से ही उत्तम होता था। उनके दर्शन से चित्त में प्रसन्नता होती थी। तथा नेत्र देखने में परिश्रम अनुभव नहीं करते थे। वे अत्यन्त कमनीय होते थे। उनका रूप असाधारण होता था। उनका रूप देखने वाले को प्रतिक्षण नया नया प्रतीत होता था। उनके कण्ठ का स्वर नदी के प्रवाह के समान गम्भीर और मेघ की तरह दीर्घ होता था। वह हंस के स्वर की तरह मधुर और क्रौञ्च पक्षी के स्वर की तरह दीर्घदेश व्यापी होता था। तथा नन्दी यानी वीणा समूह के शब्द की तरह मधुर होता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

था। उनका स्वर सिंह के शब्द के समान दूर तक जाने वाला और मधुर होता था। उनके शरीर में विचरने वाले वायु का वेग शरीर के अनुकूल होता था इसलिए उनके उदरमें वायु के वेग से उत्पन्न होने वाला गुल्म रोग उत्पन्न नहीं होता था। उनका गुदाशय कङ्कपक्षी के गुदाशय के समान नीरोग होता था। उनकी जाठराग्नि कबूतर की जाठराग्नि के समान भोजन किये हुए आहार को शीघ्र पचाने वाली अतितीव्र होती थी। अतः उनको अजीर्ण रोग कभी उत्पन्न नहीं होता था। जैसे पक्षी की गुदा में मल का लेप नहीं लगता है उसी तरह उनकी गुदा में भी मलविसर्जन करते समय उसका लेप नहीं लगता था। उनकी पीठ, दोनों पार्श्व भाग और उरू उचित परिमाण वाले होते थे। उनके मुख से निकलने वाला वायु कमल, पद्म और कुष्ठ नामक गन्ध द्रव्य के समान सुन्दर गन्धयुक्त होता था। उनके शरीर की छवि मनोहर होती थी तथा चमड़ी कोमल होती थी। वे नीरोग तथा उत्तम लक्षणों से युक्त एवं अनुपम शरीर वाले होते थे। उनके शरीर में शीघ्र निवृत्त होने वाला मल तथा विलम्ब से मिटने वाला मल, प्रस्वेद, कलङ्क, धूलि एवं मलिनता उत्पन्न करने वाली चेष्टा ये सब नहीं होते थे। तथा मूत्र और विष्ठा का लेप भी उनमें नहीं लगता था। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग उनके शरीर की शोभा से चमकते रहते थे। उनका संहनन वज्र ऋषभ नाराच होता था। उनका संस्थान समचतुरस्र होता था। वे छः हजार धनुष लम्बे होते थे। वे मनुष्य स्वभाव से ही भद्र, स्वभाव से ही विनीत, स्वभाव से ही उपशान्त होते थे। उनके क्रोध मान माया और लोभ स्वभाव से ही पतले होते थे। वे मनोहर और परिणाम में सुख देने वाली मृदुता से सम्पन्न होते थे। उनमें कपट पूर्ण मृदुता नहीं होती थी। वे समस्त क्रियाओं में शान्ति पूर्वक चेष्टा करने वाले होते थे। वे उस क्षेत्र के योग्य समस्त कल्याणों के पात्र और बड़े लोगों का विनय करने वाले और अल्प इच्छा वाले होते थे। वे धन धान्य आदि का सञ्चय नहीं करते थे तथा तीव्र क्रोध नहीं करते थे। वे तलवार चला कर तथा लेखन कला द्वारा तथा कृषि कर्म से एवं वाणिज्य कर्म से जीविका का साधन नहीं करते थे। वे कल्प वृक्ष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की शाखाएं जो कि प्रासाद की तरह आकृति वाली होती थीं, उनमें निवास करते थे। वे इच्छानुसार विषयों की कामना करने वाले होते थे। वे घर की तरह आकार वाले वृक्षों के अन्दर निवास करते थे। वे पृथिवी और कल्प वृक्षों के फूल और फल का आहार करते थे। वे मनुष्य इस प्रकार के कहे गये हैं॥ सूत्र १४॥

आसी य समणाउसो ! पुव्विं मणुयाण छव्विहे संघयणे, तंजहा (१) वज्जरिसह नाराय संघयणे, (२) रिसह नारायसंघयणे, (३) नारायसंघयणे, (४) अद्ध नारायसंघयणे, (५) कीलियसंघयणे, (६) छेवट्ट संघयणे। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं छेवट्टे संघयणे वट्टइ। आसी य आउसो ! पुव्विं मणुयाणं छव्विहे संठाणे, तंजहा (१) समचउरंसे, (२) णग्गोह परिमण्डले, (३) साइ, (४) कुज्जे, (५) वामणे, (६) हुंडे। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं हुंडे संठाणे वट्टइ॥ सूत्र १५॥

संघयणं संठाणं, उच्चत्तं आउयं य मणुयाणं। अणुसमयं परिहायइ, ओसप्पिणी काल दोसेणं॥ ५०॥
कोह मय माय लोहा, उस्सण्णं वड्ढए य मणुयाणं। कूड तुल कूडमाणा, तेणाणुमाणेण सव्वंति॥ ५१॥
विसमा अज्ज तुलाओ, विसमाणि य जणवएसु माणाणि। विसमा राजकुलाइं, तेण उ विसमाइं वासाइं॥ ५२॥
विसमेसु य वासेसुं, हुंति असाराइं ओसहिबलाइं। ओसहिदुब्बल्लेण य, आउं परिहायइ णराणं॥ ५३॥
एवं परिहायमाणे, लोए चंदुव्व काल पक्खम्मि। जे धम्मिया मणुस्सा, सुजीवियं जीवियं तेसिं॥ ५४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—आसंश्च श्रमणायुष्मन् ! पूर्वं मनुजानां षड् विधानि संहननानि । तद्यथा वज्रर्षभनाराचं, ऋषभनाराचं, नाराचं, अर्धनाराचं, कीलिका, सेवार्त्तम् । सम्प्रति खलु आयुष्मन् ! मनुजानां सेवार्त्तं संहननं वर्तते । आसँश्च आयुष्मन् ! पूर्वं मनुजानां षड्विधानानि संस्थानानि, तद्यथा—समचतुरस्रं, न्यग्रोधपरिमण्डलं, सादि, कुब्जं, वामनं, हुण्डम् । सम्प्रति खल्वायुष्मन् ! मनुजानां हुण्डं संस्थानं वर्तते ॥ १५ ॥

संहननं संस्थान मुच्चत्वमायुश्च मनुजानाम् । अनुसमयं परिहीयते, अवसर्पिणीकाल दोषेण ॥ ५० ॥
क्रोध मद माया लोभाश्चोत्सर्पं वर्धन्ते च मनुजानाम । कूटतुला कूटमानानि, तेनानुमानेन सर्वमिति ॥ ५१ ॥
विषमा अद्य तुला, विषमाणि च जनपदेषु मानानि । विषमाणि राजकुलानि, तेन तु विषमाणि वर्षाणि ॥ ५२ ॥
विषमेषु च वर्षेषु, भवन्त्यसाराण्योषधिबलानि । औषधिदुर्बलत्वेन च, आयुः परिहीयते नराणाम् ॥ ५३ ॥
एवं परिहीयमाने लोके, चन्द्र इव कृष्ण पक्षे । ये धार्मिकाः मनुष्याः, सुजीवितं जीवितं तेषाम् ॥ ५४ ॥

हे आयुष्मन् श्रमण ! पूर्व काल में मनुष्यों का संहनन छः प्रकार का होता था। जैसे कि—वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त्त । परन्तु हे आयुष्मन् ! आज कल मनुष्यों का सेवार्त्त संहनन है। हे आयुष्मन् ! पूर्व समय में मनुष्यों का संस्थान छः प्रकार का होता था। जैसे कि—समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज वामन और हुण्डक। परन्तु आज कल मनुष्यों का एक मात्र हुण्डक संस्थान होता है ॥ सूत्र १५ ॥

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से आज कल प्रतिक्षण मनुष्यों का संहनन संस्थान, उच्चता और आयु घटते जा रहे हैं। क्रोध मान माया और लोभ की अविच्छिन्न वृद्धि होती जा रही है। कूट तुला और कूटमान भी बढ़ता जाता है तथा उसी के अनुसार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभी बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं । आज कल लेने के लिये दूसरा और देने के लिये दूसरा तुला यानी बाट (तोलने का परिमाण) बनाया जाता है तथा लेने के लिए दूसरा और देने के लिए दूसरा माप भी निर्माण किया जाता है, एवं राजकुल भी विविध प्रकार का अन्यायकारी होगया है इस कारण वर्ष भी दुःखद हो गये हैं। वर्ष जब दुःखद हो जाते हैं तो औषधि यानी गेंहू आदि अन्न भी बल-हीन होजाते हैं और अन्न के बलहीन होने से प्राणियों की आयु शीघ्र ही क्षीण हो जाती है। इस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के समान निरन्तर क्षीण होते हुए प्राणि-समाज में धार्मिक मनुष्यों का ही जीवन सफल समझना चाहिये ॥ ५०-५४ ॥

आउसो ! से जहा नामए केइ पुरिसे एहाए कयबलिकम्मे कयकोऊय मंगलपायच्छित्ते सिरसिएहाए कंठे मालाकडे आविद्धमणि सुवण्णे अहय सुमहग्घवत्थ परिहिए चंदणोकिण्णगायसरीरे सरससुरहिगंध गोसीस चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णगविलेवणे कप्पियहारद्धहार तिसरयपालंब पलंबमाणे कडिसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जअंगुलिज्ज गललियंगयललियकयाभरणे णाणामणि कणगरयणकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोवियाणणे मउड-दिण्णसिरए हारुत्थयसुकयरइयवच्छे पालंब पलंबमाण सुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलिए णाणामणिकणगरयण विमल महरिहनिउणोविय मिसिमिसंत विरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठ आविद्धवीर वलए । किं बहुणा ? कप्परुक्खोविव अलंकिय विभूसिए सुइपयए भवित्ता अम्मापियरो अभिवाययिज्जा । तएणं तं पुरिसं अम्मापियरो एवं वइज्जा जीव पुत्ता ! वाससयं ति, तंपियाइं तस्स नो बहुयं हवइ । कम्हा ? वाससयं जीवंतो वीसं जुगाइं जीवइ, वीसइं जुगाइं जीवंतो दो अयणसयाइं जीवइ, दो अयणसयाइं जीवंतो छ उउसयाइं जीवइ, छ उउसयाइं जीवंतो बारस मास सयाइं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवइ, वारस मास सयाइं जीवंतो चउवीसं पक्ख सयाइं जीवइ, चउवीसं पक्खसयाइं जीवंतो छत्तीसं राईदियसहस्साइं जीवइ, छत्तीसं राईदियसहस्साइं जीवंतो दस असीयाइं मुहुत्त सयसहस्साइं जीवइ, दस असीयाइं मुहुत्त सय सहस्साइं जीवंतो चत्तारि उस्सासकोडीसए सत्त य कोडीओ अडयालीसं य सयसहस्साइं चत्तालीसं य सहस्साइं जीवइ। चत्तारि उस्सासकोडीसए जाव चत्तालीसं य उस्साससयसहस्साइं जीवंतो अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ। कहमाउसो! अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ? गोयमा! दुव्वलाए खंडियाणं बलियाए छडियाणं खयरमुसलपच्चाहयाणं ववगयतुसकणियाणं अखंडाणं अफुडियाणं फलगसरियाणं एक्केक्कवीयाणं अद्धतेरसपलियाणं पत्थएणं, सेवियणं पत्थए मागहए कल्लं पत्थो सायं पत्थो चउसट्ठी तंडुलसाहस्सीओ मागहओ पत्थओ। विसाहस्सिएणं कवलेणं बत्तीसा कवला पुरिसस्स आहारो, अट्ठावीसं इत्थीयाए, चउवीसं पण्णगस्स। एवामेव आउसो! एयाए गणणाए दो असइओ पसई, दो पसईओ सेइया होइ, चत्तारि सेइया कुलओ, चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्था आढगं, सट्ठीए आढयाणं जहण्णए कुंभे, असीइए आढयाणं मज्झिमे कुंभे, आढयसयं उक्कोसए कुंभे. अट्ठेव आढग सयाइं वाहो। एएणं वाहप्पमाणेणं अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ।

आयुष्मन्! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शिरसि स्नातः कण्ठे मालाकृतः आविद्धमणिसुवर्णः अहतसुमहार्घवस्त्रपरिहितः चन्दनोत्क्षिलच गात्रशरीरः सरससुरभिगन्धः गोशीर्षचन्दनानुलिप्तगात्रः शुचिमालावर्णकविलेपनः कल्पितहारार्द्धहार त्रिसरक प्रालम्ब प्रलम्बमानः कटिसूत्रकसुकृतशोभः पिनद्ध ग्रैवेयकाङ्गुलीयक ललिताङ्गदललितकृताभरणः नानामणिकनकरत्न-कटकत्रुटितस्तम्भितभुजः अधिकरूपसश्रीकः कुण्डलोद्योतिताननः मुकुटदत्तशिराः हारावस्तृतसुकृतरतिद वक्षाः प्रालम्ब प्रलम्बमानसुकृतपटोत्तरीयः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुद्रिकापिङ्गलाङ्गुलिकनानामणिकनक रत्न विमलमहार्ह निपुणपरिकर्मित देदीप्यमानविरचित सुश्लिष्ट विशिष्ट लष्टाविद्धवीरवलयः। किं बहुना ? कल्पवृक्षइव अलङ्कृतविभूषितः शुचिपदं भूत्वा मातापितरावभिवादयेत। ततस्तं पुरुषं मातापितरावेवं वदेता, जीव पुत्र ! वर्षशत मिति। तदपि च तस्य नो बहुकं भवति। वर्षशतं जीवन् विंशति युगानि जीवति। विंशति युगानि जीवन् द्वे अयनशते जीवति। द्वे अयनशते जीवन् षड् ऋतुशतानि जीवति। षड् ऋतुशतानि जीवन् द्वादशमासशतानि जीवति, द्वादशमासशतानि जीवन् चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवति, चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवन् षड्त्रिंशत् रात्रिन्दिवससहस्राणि जीवति। षट्त्रिंशत्रात्रिंदिवससहस्राणि जीवन् दशाशीति मुहूर्त्तशतसहस्राणि जीवति, दशाशीति मुहूर्त्तशतसहस्राणि जीवन् चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि सप्त च कोटीः अष्टचत्वारिंशच्च शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च सहस्राणि जीवति। चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि यावत् चत्वारिंशच्च उच्छ्वास सहस्राणि जीवन् सार्द्धद्वाविंशति तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते। कथमायुष्मन् ! अर्द्धत्रयोविंशति तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते ? गौतम ! दुर्बलया खण्डितानां बलवत्या छटितानां खदिरमुसलप्रत्याहतानां व्यपगततुषकणिकानां अखण्डानां अस्फुटितानां पृथक् सारिताना मेकैकबीजाना मर्द्धत्रयोदशपलानां प्रस्थकः। सोऽपि प्रस्थकः मागधः। कल्ये प्रस्थः सायं प्रस्थः चतुः षष्टि तन्दुल साहस्रिको मागधः प्रस्थकः, द्विसाहस्रिकेण कवलेन द्वात्रिंशत् कवलाः पुरुषस्याहारः, अष्टाविंशतिः स्त्रियाः, चतुर्विंशतिः पण्डकस्य। एवमेवायुष्मन् ! एतया गणनया, द्वे असत्यौ प्रसृतिः, द्वे प्रसृती सेतिका भवति। चतस्रः सेतिकाः कुडवः। चत्वारः कुडवाः प्रस्थः। चत्वारः प्रस्थाः आढकं, षष्टया आढकानां जघन्यकुम्भः, अशीत्या आढकानां मध्यमः कुम्भः, आढकशत मुत्कृष्टः कुम्भः। अष्टावाढकशतानि वाहः। एतेन वाहप्रमाणेन अर्धत्रयोविंशति तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते।

अर्थ—जैसे कोई पुरुष स्नान करके गृहदेवताओं की पूजा करता है और दुःस्वप्न का नाश करने के लिये तिलक धारण और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मङ्गल कार्य्य करता है। उसके पश्चात् सशीर्षस्नान करके कण्ठ में फूलों की माला धारण करता है। उसके पश्चात् मणि और सुवर्ण के भूषणों को धारण करके निर्मल और बहुमूल्य वस्त्र पहनता है तथा अङ्गों में चन्दन का लेपन एवं उत्तम गन्धयुक्त गोशीर्षचन्दन का तिलक लगा कर पवित्र पुष्पों की माला धारण करता है एवं शरीर की शोभा वृद्धि के लिए केशर का भी लेपन करता है। उसके पश्चात् आठ लड़ और तीन लड़ वाले हारों को पहन कर उनके ऊपर एक लम्बा हार पहनता है तथा कमर में कटिसूत्र को धारण कर गोप तथा अंगुठियों को धारण करता है। इसी तरह हाथ और भुजाओं में भूषणों को धारण करके भुजाओं को भर देता है और कानों में कुण्डल धारण करके मुख की शोभा को बढाता है, शिर के ऊपर मुकुट धारण करके शिर को दीप्त करता हुआ छाती को हारों से ढँक कर उसको अत्यधिक शोभनीय कर देता है। लम्बे वस्त्र की चादर धारण करके अँगुठियों द्वारा अपनी अङ्गुलियों को पीतवर्ण कर देता है। वह अपने हाथ में वीरकटक धारण करता है। वह वीरकटक निर्मल और श्रेष्ठ शिल्पी द्वारा रचित तथा स्वच्छ किया हुआ चमकदार, मनोहर और उत्तम सन्धिभाग वाला होता है और अधिक कहाँ तक वर्णन किया जाय ? जैसे कल्पवृक्ष पत्र पुष्प और फलों द्वारा विभूषित होता है, उसी तरह वह सब प्रकार से पवित्र होकर अपने माता पिता के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम करता है। उसको माता पिता आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि हे पुत्र ! तुम सौ वर्ष तक जीवन धारण करो। परन्तु उसकी आयु यदि सौ वर्ष की होती है तो वह सौ वर्ष तक जीता है, नहीं तो नहीं जीता है। वह सौ वर्ष की आयु भी कोई अधिक नही है। क्योंकि जो सौ वर्ष जीता है वह भी बीस युग ही जीता है। युग ५ वर्ष का माना जाता है, इसलिये सौ वर्ष में २० युग होते हैं। जो पुरुष बीस युग जीता है वह दो सौ अयन तक जीता है। छः मास का एक अयन होता है। जो दो सौ अयन तक जीता है वह छः सौ ऋतु तक जीता है और छः सौ ऋतु तक जीने वाला मनुष्य बारह सौ मास तक जीता है। जो बारह सौ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मास तक जीता है वह चौवीस सौ पक्ष तक जीता है। जो चौवीस सौ पक्ष तक जीता है वह ३६००० छत्तीस हजार अहोरात्र तक जीता है। जो छत्तीस हजार अहोरात्र तक जीता है वह दस लाख और अस्सी हजार मुहूर्त्त तक जीता है। जो दस लाख और अस्सी हजार मुहूर्त्त तक जीता है वह चार अरब सात कोटि अड़तालीस लाख और चालीस हजार उच्छ्वास तक जीता है। जो मनुष्य इतने समय तक जीता है वह साढे बाईस तन्दुलवाह जो आगे कहा जाने वाला अन्न का प्रमाण है उतना अन्न खा जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्! सौ वर्ष तक जीने वाला संसारी मनुष्य सौ वर्ष में साढे बाईस तन्दुलवाह अन्न किस तरह खा जाता है? सो बतलाइये।

उत्तर—हे गौतम! दुर्बल स्त्री ने जिसे खण्डन किया है और बलवती स्त्री ने सूप के द्वारा जिसको साफ किया है तथा जो खदिर (खैर) के मूसल से कूट कर बिना तुष का कर दिया गया है एवं जिसके दाने टूटे हुए नहीं हैं तथा जिसमें से कङ्कर आदि चुन कर बाहर निकाल दिये गये हैं ऐसे साढे बारह पल चावलों का एक प्रस्थक होता है। पल का प्रमाण इस प्रकार समझना चाहिये—पाँच गुञ्जा का एक माष होता है और सोलह माषों का एक कर्ष होता और चार कर्ष का एक पल होता है। इस प्रकार ३२० गुञ्जा के प्रमाण को एक पल कहते हैं। ऐसे साढे बारह पलों का एक प्रस्थक होता है जो मागध भी कहा जाता है। उस प्रस्थक या मागध के प्रमाण से प्रतिदिन प्रातः काल के भोजन के लिये एक प्रस्थक तथा सायंकाल के भोजन के लिए एक प्रस्थक अन्न की आवश्यकता होती है। एक प्रस्थक में ६४ हजार चावल के दाने होते हैं। दो हजार चावल के दानों का एक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कवल होता है। ऐसे बत्तीस कवलों में एक पुरुष का आहार पूर्ण होता है और अठाईस कवलों में स्त्री का आहार पर्याप्त होता है। तथा चौबीस कवलों में नपुंसक का आहार पूर्ण होता है। धान्य से पूर्ण और नीचे की ओर किया हुआ मनुष्य का हाथ (मुट्ठी) असती कहलाता है। ऐसे दो असती का एक प्रसृति प्रमाण होता है और दो प्रसृति प्रमाण का एक सेतिका प्रमाण होता है और चार सेतिका प्रमाण का कुडव होता है। चार कुडव का एक प्रस्थक होता है और चार प्रस्थक का एक आढक होता है। साठ आढक का एक जघन्य कुम्भ और अस्सी आढक का मध्यम कुम्भ एवं सौ आढक का उत्कृष्ट कुम्भ होता है और आठ सौ आढकों का एक वाह प्रमाण होता है। इस वाह प्रमाण से मनुष्य सौ वर्ष में साढे बाईस वाह अन्न खा जाता है।

ते य गणिय निद्दिट्ठा—

चत्तारि य कोडीसया, सट्ठिं चेव य हवंति कोडीओ। असीइं य तंदुलसयसहस्सा (४६०८०००००), हवंति त्ति मक्खायं॥ ५५ ॥

तं एवं अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजंतो अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजइ, अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजंतो चउवीसं नेहाढग सयाइं भुंजइ, चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजंतो छत्तीसं लवण पलसहस्साइं भुंजइ। छत्तीसं लवण पलसहस्साइं भुंजंतो छप्पडग साडगसयाइं नियंसेइ दो मासिएण परियट्टएणं, मासिएण वा परियट्टएण वारसपड साडग सयाइं नियंसेइ। एवामेव आउसो! वास सयाउयस्स सव्वं गणियं तुलियं मवियं, नेह लवण भोयण छायणं वि॥ एयं गणियप्पमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं जस्सत्थि तस्स गुणिज्जइ जस्स नत्थि तस्स किं गणिज्जइ ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—तानि च गणितनिर्दिष्टानि "चत्वारि च कोटिशतानि' षष्टिश्चैव भवन्ति कोटयः। अशीतिश्च तन्दुलशत सहस्राणि, भवन्तीत्या ख्यातम्" ॥ तदेव मर्धषट्क मुद्गकुम्भान् भुङ्क्ते। अर्धषट् मुद्गकुम्भान् भुञ्जानः चतुर्विंशतिं स्नेहाढकशतानि भुङ्क्ते। चतुर्विंशतिं स्नेहाढक शतानि भुञ्जानः षट्त्रिंशत् लवणपल सहस्राणि भुङ्क्ते। षट्त्रिंशत् लवणपल सहस्राणि भुञ्जानः षट् पट्टक शाटकशतानि परिदधाति। द्विमासिकेन परिवर्तनेन, मासिकेन वा परिवर्तनेन द्वादश पटशाटकशतानि परिदधाति। एव मेव आयुष्मन्! वर्षशतायुषः सर्व गणितं लुलितं मथितं स्नेह लवण भोजनाच्छादमानामपि। एतद्गणितप्रमाणं द्विविधं भणितं महर्षिभिः। यस्यास्ति तस्य गण्यते यस्य नास्ति तस्य किं गण्यते।

भावार्थः—पूर्वपाठ में कहा गया कि—सौ वर्ष जीवन धारण करने वाला मनुष्य साढे बाईस वाह तन्दुल का भोजन करता है। अब इस पाठ में यह बताया जाता है कि—एक वाह तन्दुल में कितने तन्दुल के दाने होते हैं। गणित करने से एक वाह तन्दुल के ४६०८०००००० चार अरब साठ करोड़ और अस्सी लाख दाने होते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सौ वर्ष के जीवन काल में साढे बाईस वाह तन्दुलों का भोजन करता है वह साढे पाँच मूँग का घडा अर्थात् साढे पाँच घड़ा मूँग भी खा जाता है तथा चौवीस सौ आढक स्नेह यानी घृत और तेल खा जाता है एवं छत्तीस हजार पल नमक खा जाता है तथा वह सौ वर्ष में ६०० कपडे पहिनता है। यदि दो मास पर नूतन कपड़ा पहिनता है तो सौ वर्ष में ६०० कपड़े पहनता है और यदि प्रतिमास नूतन वस्त्र धारण करता है तब तो वह सौ वर्ष में १२०० कपड़े पहनता है। हे आयुष्मन सौ वर्ष तक जीवन धारण करने वाले मनुष्यों के उपभोग में आने वाले तन्दुल, वस्त्र, नमक तेल और घृत का हिसाब पूर्वोक्त प्रकार से महर्षियों ने बतलाया है। यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हिसाब उस मनुष्य की अपेक्षा से कहा गया है जिसके निकट खाने पहनने के लिये सामग्री विद्यमान है किन्तु जिसके निकट वह सामग्री है ही नहीं उसका हिसाब ही क्या हो सकता है ?

ववहारगणियदिट्ठं, सुहुमं निच्छयगयं मुणेयव्वं । जइ एवं ण वि एयं, विसमा गणणा मुणेयव्वा ॥ ५६ ॥

छाया—व्यवहारगणितदृष्टं, सूक्ष्मं निश्चयगतं ज्ञातव्यम् । यदचैतन्नाप्येतद् । विषमा गणना ज्ञातव्या ॥ ५६ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त पाठ में जिस गणित के द्वारा सौ वर्ष जीवन धारण करने वाले पुरुष के भोजन और वस्त्र का हिसाब बतलाया गया है वह व्यवहार गणित समझना चाहिये। इससे भिन्न एक सूक्ष्म गणित होता है जिसको निश्चय गणित कहते हैं। जब निश्चय गणित के अनुसार गणना की जाती है तब व्यवहार गणित का हिसाब नहीं रहता है। अतः इन दोनों गणितों की गणना परस्पर भिन्न समझनी चाहिये ॥ ५६ ॥

कालो परमणिरुद्धो, अविभज्जो तं तु जाण समयं तु । समया य असंखिज्जा, हवंति उस्सासनिस्सासे ॥ ५७ ॥

छाया—कालः परमनिरुद्धः अविभाज्यः तं तु जानीहि समयं तु । समयाश्चासंख्येयाः, भवन्ति उच्छ्वासनिःश्वासे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—जिसका विभाग नहीं किया जा सकता है ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म काल को समय समझो। इस प्रकार एक उच्छ्वास निःश्वास में असंख्यात समय व्यतीत होते हैं ॥ ५७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो। एगे उस्सासनिस्सासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥ ५८ ॥

छाया—हृष्टस्यानवगलस्य, निरुपक्लिष्टस्य जन्तोः। एक उच्छ्वासनिःश्वासः, एष प्राण इत्युच्यते ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जो पुरुष पुष्ट है तथा रोग और क्लेश से रहित है उसके एक उच्छ्वास निःश्वास को प्राण कहते हैं ॥ ५८ ॥

सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे। लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते वियाहिये ॥ ५९ ॥

छाया—सप्त प्राणाः स स्तोकः, सप्त स्तोकाः स लवः। लवानां सप्तसप्तत्या, एष मुहूर्त्तो व्याख्यातः ॥ ५९ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त सात प्राणों का एक स्तोक काल कहा जाता है और सात स्तोकों का एक लव और ७७ सत्तहत्तर लवों का एक मुहूर्त काल कहा गया है ॥ ५९ ॥

एग मेगस्स णं भंते ! मुहूत्तस्स केवइया उस्सासा वियाहिया ? गोयमा !
तिण्णि सहस्सा सत्त य, सयाणि तेवत्तरिं च उस्सासा। एस मुहूत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंत नाणीहिं ॥ ६० ॥

छाया—एकैकस्य हे भदन्त ! मुहूर्त्तस्य कियन्त उच्छ्वासा व्याख्याताः ? गौतम !
त्रीणि सहस्राणि, सप्त च शतानि त्रिसप्ततिश्च उच्छ्वासाः। एष मुहूर्त्तो भणितः, सर्वैरनन्तज्ञानिभिः ॥ ६० ॥

भावार्थः—(प्रश्न) हे भगवन्। एक मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ? हे गौतम ! एक मुहूर्त्त में तीन हजार सात सौ और ७३ उच्छ्वास कहे गये हैं। सभी अनन्तज्ञानियों ने यही मुहूर्त्त का प्रमाण बतलाया है ॥ ६० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दो नालिया मुहूत्तो, सट्ठिं पुण नालिया अहोरत्तो। पन्नरस अहोरत्ता पक्खो, पक्खा दुवे मासो ॥ ६१ ॥

छाया— द्वे नालिके मुहूर्त्तः, षष्टिः पुनर्नालिकाः अहोरात्रः। पञ्च दशाहोरात्राः पक्षः, पक्षौ द्वौ मासः ॥ ६१ ॥

भावार्थः—दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है और साठ घड़ी का दिन रात होता है। पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष और दो पक्षों का एक मास होता है ॥ ६१ ॥

दाडिमपुप्फागारा लोहमई, नालिया उ कारव्वा। तीसे तलम्मि छिद्दं, छिद्दप्पमाणं पुणो वुच्छं ॥ ६२ ॥

छाया—दाडिमपुष्पाकारा लोहमयी, नालिका तु कारयितव्या। तस्यास्तले छिद्रं, छिद्रप्रमाणं पुनर्वक्ष्ये ॥ ६२ ॥

भावार्थः—दाडिम के फूल के समान आकार वाली एक घड़ी बनवानी चाहिये और उसके तल में एक छिद्र बनवाना चाहिये। उस छिद्र का प्रमाण मैं आगे बताऊंगा ॥ ६२ ॥

छन्नउइ पुच्छवाला, तिवासजायाए गोतिहाणीए। असंवलिया उज्जाय, णायव्वं नालिया छिद्दं ॥ ६३ ॥

छाया—षण्णवतिः पुच्छबालाः, त्रिवर्षजातायाः गोवत्सायाः। असंवलिताः ऋतुकाः, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६३ ॥

भावार्थः—तीन वर्ष की बछड़ी के पूंछ के ९६ छयानवे बाल, जो सीधे और मुड़े हुए नहीं हैं उनके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६३ ॥

अहवा उ पुच्छवाला, दुवासजायाए गयकरेणूए। दो वाला अब्भग्गा, णायव्वं नालियाच्छिद्दं ॥ ६४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—अथवा तु पुच्छबालाः, द्विवर्ष जातायाः गज करेणोः। द्वौ बालावभग्नौ, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६४ ॥

भावार्थः—दो वर्ष के हाथी के बच्चे के पूँछ के दो बाल जो टूटे हुए नहीं हैं उनके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६४ ॥

अहवा सुवण्ण मासा, चत्तारि सुवट्टिया घणा सूई। चउरंगुलप्पमाणा, णायव्वं नालियाच्छिद्दं ॥ ६५ ॥

छाया—अथवा सुवर्णमाषाश्चत्वारः सुवर्तिता घना सूचिः। चतुरङ्गुलप्रमाणा, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६५ ॥

भावार्थः—अथवा चार मासा सोना के बराबर एक वर्तुलाकर (गोल) और घन सुई होती है। उस सुई का प्रमाण चार अङ्गुल का होता है। उसके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६५ ॥

उदगस्स नालियाए, हवंति दो आढयाओ पमाणं। उदगं य भाणियव्वं, जारिसयं तं पुणो वुच्छं ॥ ६६ ॥

छाया—उदकस्य नालिकायाः, भवतो द्वावाढकौ प्रमाणम्। उदकञ्च भणितव्यं, यादृशकं तत्पुनर्वक्ष्ये ॥ ६६ ॥

भावार्थः—घड़ी के अन्दर दो आढक जल भरना चाहिये। वह जल जिस तरह का होना चाहिये वह बताया जाता है ॥ ६६ ॥

उदगं खलु णायव्वं, कायव्वं दूसपट्टपरिपूयं। मेहोदगं पसण्णं, सारइयं वा गिरिणईए ॥ ६७ ॥

छाया—उदकं खलु ज्ञातव्यं, कर्त्तव्यं दूष्यपट्टपरिपूतम्। मेघोदकं प्रसन्नं, शारदिकं वा गिरिनद्याः ॥ ६७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—घड़ी में भरने के लिये जल को वस्त्र द्वारा छान लेना चाहिये । वह जल या तो मेघ का निर्मल जल हो अथवा शरतकाल की पर्वतीय नदी का हो ॥ ६७ ॥

बारस मासा संवच्छरो य, पक्खा उ ते उ चउवीसं । तिण्णेव य सट्ठिसया, हवंति राइंदियाणं य ॥ ६८ ॥

छाया—द्वादशभिर्मासैः संवत्सरश्च, पक्षास्तु ते तु चतुर्विंशतिः । त्रीण्येव च षष्टिशतानि, भवन्ति रात्रिन्दिवानि ॥ ६८ ॥

भावार्थः—बारह मास का एक वर्ष होता और एक वर्ष के चौवीस पक्ष होते हैं। चौवीस पक्षों के तीन सौ साठ दिन रात होते हैं ॥ ६८ ॥

एगं य सयसहस्सं, तेरस चेव य भवे सहस्साइं । एगं य सयं नउयं, हुंति अहोरत्त उस्सासा ॥ ६९ ॥

छाया—एकञ्च शत सहस्रं, त्रयोदश चैव च भवेयुः सहस्राणि । एकञ्च शतं नवति र्भवन्ति अहोरात्रे उच्छ्वासाः ॥ ६९ ॥

भावार्थः—एक दिन रात में एक लाख तेरह हजार और एक सौ नव्वे उच्छ्वास होते हैं ॥ ६९ ॥

तित्तीस सय सहस्सा, पंचाणउई भवे सहस्साइं । सत्त य सया अणूणा, हवंति मासेण उस्सासा ॥ ७० ॥

छाया—त्रयस्त्रिंशच्छत सहस्राणि, पञ्चनवतिश्च भवेयुः सहस्राणि । सप्तशतान्यनूनानि, भवन्ति मासेनोच्छ्वासाः ॥ ७० ॥

भावार्थः—एक मास में ३३ लाख ९५ हजार और पूरे सात सौ उच्छ्वास होते हैं ॥ ७० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चत्तारि य कोडीओ, सत्तेव य हुंति सय सहस्साइं । अडयालीस सहस्सा, चत्तारि सया य वरिसेण ॥ ७१ ॥

छाया—चतस्रः कोटयः, सप्त च भवन्ति शतसहस्राणि । अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि, चत्वारि शतानि च वर्षेण ॥ ७१ ॥

भावार्थः—एक वर्ष में चार कोटि सात लाख अड़तालीस हजार और चार सौ उच्छ्वास होते हैं ॥ ७१ ॥

चत्तारि य कोडिसया, सत्त य कोडिओ हुंति अवराओ । अडयाल सयसहस्सा, चत्तालीसं सहस्साइं ॥ ७२ ॥

छाया—चत्वारि कोटिशतानि, सप्त च कोटयः भवन्ति अपराः । अष्टचत्वारिंशच्छतसहस्राणि, चत्वारिंशत्सहस्राणि ॥ ७२ ॥

भावार्थः—४०७४८४०००० चार अर्बुद सात कोटि अड़तालीस लाख और चालीस हजार उच्छ्वास सौ वर्ष की आयु वाले प्राणी के होते हैं ॥ ७२ ॥

वाससयाउस्सेए उस्सासा, इत्तिया मुणेयव्वा । पिच्छह आउस्स खयं, अहोणिसं झिज्झमाणस्स ॥ ७३ ॥

छाया—वर्षशतायुष्कस्योच्छ्वासाः इयन्तो ज्ञातव्याः । पश्यतायुषः क्षय, महर्निशं क्षीयमाणस्य ॥ ७३ ॥

भावार्थः—हे भव्य जीवो ! सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष के इतने ही उच्छ्वास होते हैं । रात दिन क्षय होते हुए आयु के क्षय की ओर दृष्टि पात करो ॥ ७३ ॥

राइंदिएण तीसं तु मुहुत्ता, नव सयाइं मासेणं । हायंति पमत्ताणं, न य णं अबुहा वियाणंति ॥ ७४ ॥

छाया—रात्रिन्दिवेन त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, नव शतानि मासेन । हीयन्ते प्रमत्तानां, न चाबुधाः विजानन्ति ॥ ७४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—दिन रात मे तीस और एक मास में नौ सौ मुहूर्त्त प्रमादी के नष्ट होते हैं परन्तु अज्ञानी जीवों को इसका ज्ञान नहीं होता है ॥ ७४ ॥

तिण्णि सहस्से सगले, छच्च सए उडुवरो हरइ आउं । हिमंते गिम्हासु य, वासासु य होइ णायव्वं ॥ ७५ ॥

छाया—त्रीणि सहस्राणि सकलानि, षट्शतानि उडुवरो हरत्यायुः । हेमन्ते ग्रीष्मासु च, वर्षासु च भवति ज्ञातव्यम् ॥ ७५ ॥

भावार्थः—हेमन्त ऋतु में सूर्य्य छः सौ तीन हजार मुहूर्त्त आयु को हरण करता है। इसी तरह ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु में जानना चाहिये ॥ ७५ ॥

वाससयं परमाऊ, इत्तो पण्णास हरइ निद्दाए । इत्तो बीसइ हावइ, बालत्ते वुड्ढभावे य ॥ ७६ ॥

छाया—वर्षशतं परमायुः, इतो पञ्चाशत् हरति निद्रया । इतो विंशतिर्हीयते, बालत्वे वृद्धभावे च ॥ ७६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों की परम आयु सौ वर्ष की होती है, उसमें से पचास वर्ष तो वह सोने में नष्ट कर देता है । बाकी ५० वर्ष में से १० वर्ष बाल्यकाल में और दस वर्ष वृद्धावस्था में नष्ट करता है । इस प्रकार ५० में से २० वर्ष निकल कर शेष ३० वर्ष ही आयु के बचते हैं ॥ ७६ ॥

सीउण्ह पंथ गमणे, खुहापिवासा भयं य सोगे य । णाणा विहा य रोगा, हवंति तीसाए पच्छद्धे ॥ ७७ ॥

छाया—शीतोष्ण पथिगमनानि, क्षुत्पिपासे भयञ्च शोकश्च । नानाविधाश्च रोगाः, भवन्ति त्रिंशतः पश्चादर्धे ॥ ७७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—शीत, उष्ण, मार्गगमन, क्षुधा, पिपासा, भय, शोक और नाना प्रकार के रोग इनके द्वारा तीस वर्ष में से आधे १५ वर्ष व्यर्थ नष्ट होजाते हैं ॥ ७७ ॥

एवं पंचासीई गट्ठा, पण्णरसमेव जीवंति । जे हुंति वाससइया, न य सुलहा वास सयजीवा ॥ ७८ ॥

छायाः—एवं पञ्चाशीतिर्नष्टानि, पञ्चदश एव जीवन्ति । ये भवन्ति वर्षशतिकाः, न च सुलभाः वर्षशतजीवाः ॥ ७८ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से पचासी वर्ष तो व्यर्थ ही व्यतीत होजाते हैं, इसलिये जो सौ वर्ष तक जीता है वह वस्तुतः १५ ही वर्ष जीता है और सौ वर्ष तक जीने वाला पुरुष भी विरला ही होता है ॥ ७८ ॥

एवं णिस्सारे माणुसत्तणे, जीविए अहिवडंते । न करेह धम्मचरणं, पच्छा पच्छाणुताहे हा ॥ ७९ ॥

छायाः—एवं निस्सारे मानुषत्वे, जीवितेऽधिपतति । न कुरुत धर्मचरणं, पश्चात् पश्चादनुतप्स्थ हा ! ॥ ७९ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से यह मानुष जीवन साररहित है और जीवन व्यतीत होता हुआ चला जा रहा है तो भी आप लोग धर्म का आचरण नहीं करते हैं यह दुःख का विषय है। आपको अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ ७९ ॥

घुट्ठंमि सयं मोहे, जिणेहिं वरधम्मतित्थमग्गस्स । अत्ताणं य न जाणह, इह जाया कम्मभूमीए ॥ ८० ॥

छायाः—घुष्टे स्वयं मोहे, जिनैर्वरधर्मतीर्थमार्गे । आत्मानं च न जानीत, इह जाता कर्मभूमौ ॥ ८० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—श्री तीर्थङ्करों ने स्वयं यह घोषित किया है कि—ज्ञान दर्शन और चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं, ये ही मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं तो भी आप लोग मोहवशीभूत होकर इस धर्म को अङ्गीकार नहीं करते हैं और आत्मज्ञान में प्रवृत्त नहीं होते हैं। आप लोग कर्मभूमि में उत्पन्न हुए हैं। अतः आपको यह अवश्य करना चाहिये ॥ ८० ॥

नईवेगसमं चंचलं, जीवियं जुव्वणं य कुसुमसमं। सुक्खं य जमनियत्तं, तिण्णिवि तुरमाणभुज्जाइं ॥ ८१ ॥

छायाः—नदीवेगसमं चञ्चलं जीवितं, यौवनञ्च कुसुमसमम्। सौख्यञ्च यदनियतं त्रीण्यपि त्वरमाणभोग्यानि ॥ ८१ ॥

भावार्थः—यह जीवन नदी के वेग के समान चञ्चल है और यौवन फूल के समान शीघ्र विनाशी है तथा सुख भी स्थिर नहीं है। ये तीनों ही अतिशीघ्र भोगे जाकर क्षय होजाते हैं।

एयं खु जरामरणं, परिक्खिवइ वग्गुरा व मयजुहं। न य णं पिच्छह पत्तं, सम्मूढा मोहजालेणं ॥ ८२ ॥

छाया—एतत्खलु जरामरणं, परिक्षिपति वागुरा इव मृगयूथम्। न च पश्यथ प्राप्तं, सम्मूढा मोहजालेन ॥ ८२ ॥

भावार्थः—जैसे मृगयूथ को जाल वेष्टित कर लेता है उसी तरह प्राणिवर्ग को जरामरण वेष्टित कर रहा है तथापि मोहजाल से मोहित होकर आप लोग इसे नहीं देख रहे हैं ॥ ८२ ॥

आउसो ! जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं मणभिरामं थिज्जं (धिज्जं) विसासियं संमयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं रयण करंडओविव सुसंगोवियं चेलपेडाविव सुसंपरिवुडं तिल्लपेडाविव सुसंगोवियं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मा णं उण्हं मा णं सीयं मा णं वाला मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाहि य पित्तिय संभिय संनिवाइय विविहा रोगायंका फुसंतु तिकट्टु एवं पियाइं अधुवं अणिययं असासयं चयावचइयं विप्पणास-धम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स विप्पच्चइयव्वं ।

छाया—आयुष्मन् यदपि च इदं शरीरं इष्टं कान्तं प्रियं मनोज्ञं मनोऽमं मनोऽभिरामं स्थिरं वैश्वासिकं सम्मतं बहुमतं अनुमतं भाण्डकरण्डकसमानं रत्नकरण्डकमिव ससङ्कोपितं चेलपेटेव संपरिवृतं तैलपेटेव ससंगोपितं मा उष्णं, मा शीतं, मा व्यालाः, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा चौराः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा व्याधिः, पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपातिक विविधा रोगातङ्काः स्पृशन्तु इति कृत्वा, एवमप्यध्रुव-मनियतमशाश्वतं चयापचयिकं विप्रणाशधर्मकं पश्चाद् वा पूर्वं वा अवश्यं विप्रत्यक्तव्यम् ।

भावार्थः—हे आयुष्मन् ! यह जो शरीर है, यह बहुत ही इष्ट है, यह बहुत ही कमनीय है। यह बहुत ही प्रिय है, यह मन को बहुत ही प्रिय है। मन इसमें सदा लगा रहता है। यह मन को बहुत ही रमणीय मालूम होता है, यह स्थिर है, विश्वसनीय है। इसके समस्त कार्य्य अच्छे मालूम होते हैं। यह बहुत ही माननीय है। इसका कभी भी अप्रिय नहीं किया जाता है। जैसे जेवर के भाण्ड की यत्नपूर्वक रक्षा की जाती है। जैसे रत्न की पेटी की बहुत हिफाजत के साथ रक्षा की जाती है उसी तरह इस शरीर की रक्षा की जाती है। जैसे कपड़े से भरी हुई पेटी जाब्ते के साथ रखी जाती है एवं जिस तरह तेल और घी के भाजन गोपनपूर्वक रखे जाते हैं उसी तरह इस शरीर की हिफाजत की जाती है। सर्दी, गर्मी, सर्प आदि जानवर, क्षुधा, पिपासा, चोर, दंश, मशक, व्याधि तथा वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के रोग और आतङ्क से इस शरीर की रक्षा की जाती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता है किन्तु क्षण क्षण में नष्ट होता रहता है। इष्ट आहार आदि के लाभ होने से वृद्धि को प्राप्त होता है और नहीं प्राप्त होने से क्षीण होजाता है। यह स्वभावतः विनाशशील है। पहले या पीछे यह अवश्य ही जीव के द्वारा छोड़ दिया जाता है।

एअस्स वियाइं आउसो! आणुपुव्वेणं अट्ठारस्सा य पिट्ठकरण्डगसंधिओ वारस पंसलिया करंडा छप्पंसुलिए कडाहे विहत्थिया कुच्छी चउरंगुलिया गीवा चउ पलिया जिब्भा दुपलियाणि अच्छीणि चउ कवालं सिरं बत्तीसं दंता सत्तंगुलिया जीहा अद्धुट्ठपलियं हिययं पणवीसं पलाइं कालिज्जं दो अंता पंच वामा पण्णत्ता, तं जहा—थूलंते य, तणुयंते य, तत्थणं जे से थूलंते तेणं उच्चारे परिणमइ। तत्थ णं जे से तणुयंते तेणं पासवणे परिणमइ, दो पासा पण्णत्ता तं जहा–वामे पासे दाहिणपासे य। तत्थ णं जे से वामे पासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से दाहिणे पासे से दुहपरिणामे।

छाया—एतस्यापि आयुष्मन्! आनुपूर्व्या अष्टादश च पृष्टिकरण्डक सन्धयः, द्वादश पार्श्वुलिकाः करण्डकाः, षट् पार्श्वुलिकाः कटाहाः, वितस्तिका कुक्षिः, चतुरङ्गुलिका ग्रीवा, चतुष्पलिका जिव्हा, द्विपलिके अक्षिणी, चतुष्कपालं शिरः, द्वात्रिंशद्दन्ताः, सप्ताङ्गुलिका जिव्हा, साद्धत्रिपलं हृदयं, पञ्चविंशतिपलानि कालिज्जं, द्वे अन्त्रे, पञ्च वामे प्रज्ञप्ते, तद्यथा स्थूलान्त्रञ्च तन्वन्त्रञ्च। तत्र यत् स्थूलान्त्रं तेनोच्चारः परिणमति। तत्र यत् तन्वन्त्रं तेन प्रस्रवणं परिणमति। द्वे पार्श्वे प्रज्ञप्ते तद्यथा वामं पार्श्वं, दक्षिणपार्श्वञ्च। तत्र यत् वामं पार्श्वं तत् सुखपरिणामं, तत्र यत् दक्षिणं पार्श्वं तत् दुःखपरिणाममम्।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—हे आयुष्मन्! इस शरीर में पीठ की हड्डी में क्रमशः अठारह सन्धियाँ हैं। उनका आकार बाँस की गाँठ के समान है। उन अठारह सन्धियों में से बारह हड्डियाँ निकली हुई हैं जो पसली कहलाती हैं। वे पसलियाँ छाती के मध्य में ऊपर की ओर जाने वाली हड्डी में लगकर स्थित हैं। पीठ की हड्डी में जो छः सन्धियाँ शेष हैं, उनमें से छः हड्डियाँ निकल कर दोनों पार्श्वभागों को घेर कर स्थित हैं। वे हृदय के दोनों तरफ छाती से नीचे रहती हैं। जिन लोगों का कुक्षि (पेट) ढीली होती है उनकी ये हड्डियाँ परस्पर मिली हुई नहीं होती हैं। इन हड्डियों को कडाह कहते हैं। मनुष्यों की कुक्षि दो वितस्ती की होती है और गर्दन चार अङ्गुल की एवं जीभ चार पल की होती है। नेत्र के दोनों गोलक दो पल के होते हैं। हड्डियों के चार खंडों से शिर बना होता है। मुख में बत्तीस दाँत होते हैं। जंभ अपनी अपनी अङ्गुलि के प्रमाण से सात अङ्गुल की होती है। हृदय का मांस खण्ड साढे तीन पल का होता है। छाती के भीतर का मांस खण्ड जिसे कलेजा कहते हैं वह पचीस पल का होता है। आँतडियाँ दो होती हैं। वे दोनों पाँच पाँच वाम प्रमाण की होती हैं। उनमें से एक स्थूल होती है और दूसरी सूक्ष्म होती है। जो स्थूल आँतडी होती है उसके द्वारा मल बनता है और जो सूक्ष्म है उसके द्वारा मूत्र बनता है। पार्श्व दो होते हैं एक वाम ओर दूसरा दक्षिण। इनमें से वाम पार्श्व सुख से अन्न पचाता है और दक्षिण पार्श्व दुःख से पचाता है।

आउसो! इमम्मि सरीरए सट्ठि संधिसयं सत्तुत्तरं मम्मसयं तिण्णि अट्ठिदामसयाइं नव एहारुसयाइं सत्त सिरा सयाइं पंच पेसी सयाइं नव धमणीओ नवनउई य रोमकूव सयसहस्साइं विणा केस मंसुणा, सह केसमंसुणा अद्धुआट्ठो रोमकूवकोडीओ। आउसो! इमम्मि सरीरए सट्ठि सिरासयं नाभिप्पभवाणं उड्ढगामिणीणं सिरमुवगयाणं जाओ रसहरणीओ त्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वुच्चंति जाणंसि निरुवग्घाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं य भवइ, जाणंसि उवग्घाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं उवहम्मइ ॥

छाया—आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्टिः सन्धिशतं, सप्तोत्तरं मर्मशतं भवति । त्रीण्यस्थिदामशतानि, नव स्नायु शतानि, सप्तशिराशतानि, पञ्च पेशीशतानि नव धमन्यः, नवनवतिश्च रोमकूपशतसहस्राणि विनाकेशश्मश्रुभिः, सह केशश्मश्रुभिः सार्द्धास्तिस्रो रोमकूपकोटयः । आयुष्मन ! अस्मिन शरीरे षष्टिः शिराणां, शतं नाभिप्रभवाणां ऊर्ध्वगामिनीनां शिरस्युपगतानां याः रसहरण्य इत्युच्यन्ते । यासां निरुपघातेन चक्षुः श्रोत्रघ्राण जिह्वाबलञ्च भवति । यासाञ्चोपघातेन चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाबलमुपहन्यते ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस शरीर में १६० सन्धिस्थान होते हैं। अंगुलि आदि हड्डियों के मिलने का जो स्थान है उसे सन्धिस्थान कहते हैं। एवं १०७ मर्मस्थान होते हैं। तथा हड्डियों की ३०० मालायें होती हैं। हड्डियों को बन्धन करने वाली शिरायें जो स्नायु कहलाती हैं वे ६०० होती हैं। तथा सात सौ नसें होती हैं। पांच सौ पेशी होती हैं। जिन में रस बहता रहता है ऐसी नाड़ियाँ नौ होती हैं। दाढी मूँछ के केशों केबिना निन्नाणवे लाख रोम कूप होते हैं। और दाढी मूछ के केशों को मिला कर साढे तीन कोटि रोमकूप होते हैं। पुरुष के इस शरीर में नाभि से उत्पन्न होने वाली सात सौ शिरायें (नसें) होती हैं उनमें से एक सौ साठ शिरायें नाभि से निकल कर शिर में जाकर मिलती हैं। उनको रसहरणी कहते हैं। ऊपर जाने वाली उन नाड़ियों की सहायता से मनुष्य के नेत्र, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा का बल वृद्धि को प्राप्त होता है। तथा उन नाडियों के नष्ट होने से नेत्र, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा का बल नष्ट हो जाता है।

आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठि सिरासयं नाभिप्पभवाणं अहोगामिणीणं पायतलमुवगयाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जंघाबलं भवइ । ताणं चेव से उवग्घाएणं सीसवेयणा अद्धसीसवेयणा मत्थयसूले अच्छीणि अधिज्जंति ।

छाया—आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्टिःशिराशतं नाभिप्रभवाणा मधोगामिनीनां पादतलमुपगतानां, यासां निरुपघातेन जंघाबलं भवति । तासाञ्च तस्योपघातेन शिरोवेदना अर्द्धशिरोवेदना मस्तकशूल अक्षिणी अन्धी भवतः ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस शरीर में १६० शिरायें नाभि से निकल कर नीचे की ओर जाती हुई पैर के तल में मिलती हैं । उन शिराओं की सहायता से जंघा का बल उत्पन्न होता है । उन शिराओं में जब किसी प्रकार का विकार पैदा हो जाता है तब शिर में पीड़ा होती है । आधे शिर में पीड़ा होती है, मस्तक में शूल रोग हो जाता है और नेत्र अन्धे हो जाते हैं ।

आउसो ! इमंमि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं तिरियगामिणीणं हत्थतलमुवगयाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं बाहुबलं हवइ, ताणं चेव से उवग्घाएणं पासवेयणा पुट्ठिवेयणा कुच्छिवेयणा कुच्छिसूले हवइ ।

छाया—आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्टिः शिराणां शतं नाभिप्रभवाणा तिर्य्यग्गामिनीनां हस्ततलमुपगतानां यासां निरुपघातेन बाहुबलं भवति । तासाञ्चैव तस्योपघातेन पार्श्ववेदना पृष्ठवेदना कुक्षिवेदना कुक्षिशूलं भवति ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस शरीर में १६० नाड़ियाँ नाभि से निकल कर तिर्छी जाती हैं और वे हाथ के तल में जाकर मिल जाती हैं उनके ठीक रहने पर भुजा का बल बढ़ता है और उनमें विकार उत्पन्न होने पर पार्श्व पीड़ा, पृष्ठ पीड़ा, उदर पीड़ा और उदर में शूल रोग उत्पन्न होता है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आउसो ! इमस्स जंतुस्स सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं अहो गामिणीणं गुदप्पविट्ठाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं मुत्तपुरीसवाउ कम्मं पवत्तइ । ताणं चेव उवग्घाएणं मुत्त पुरीसवाउनिरोहेणं अरिसा खुब्भंति पंडु रोगो हवइ ।

छाया—आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः षष्टिः शिराणां शतं नाभिप्रभवाणा मधोगामिनीना गुदप्रविष्टाना यासां निरुपघातेन मूत्रपुरीष वायुकर्म प्रवर्तते । तासाञ्चोपघातेन मूत्रपुरीषवायु निरोधेन अर्शांसि क्षुभ्यन्ति पाण्डुरोगश्च भवति ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस जन्तु की नाभि से उत्पन्न होकर नीचे की ओर जाकर गुदा में मिलने वाली १६० नाड़ियाँ होती हैं । जिनके ठीक रहने पर मूत्र, मल और वायु का निकलना उचित रूप में होता है और इनके विकृत होने पर मूत्र मल और वायु के निरोध हो जाने से बवासीर की व्याधि और पाण्डुरोग उत्पन्न होता है ।

आउसो ! इमस्स जंतुस्स पणवीसं सिराओ पित्तधारिणीओ पणवीसं सिराओ सिंभधारिणीओ दस सिराओ सुक्कधारिणीओ सत्तसिरासयाइं पुरीसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स । आउसो ! इमस्स जंतुस्स सहिरस्स आढयं वसाए अद्धाढयं मत्थुलुंगस्स पत्थो मुत्तस्स आढयं पुरीसस्स पत्थो पित्तस्स कुडवो सिंभस्स कुडवो सुक्कस्स अद्धकुडवो, जं जाहे दुट्ठं भवइ तं ताहे अइप्पमाणं भवइ, पंचकोट्ठे पुरिसे, छ कोट्ठा इत्थिया, नवसोए पुरिसे, इक्कारस सोया इत्थिया, पंच पेसीसयाइं पुरिसस्स, तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स । (सूत्र १६)

छाया—आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः पंचविंशतिः शिराः पित्तधारिण्यः पंचविंशतिः शिराः श्लेष्मधारिण्यः दशशिराः शुक्रधारिण्यः सप्त शिराशतानि पुरुषस्य, त्रिंशदूनाः स्त्रियाः, विंशत्यूनाः पंडकस्य । आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः रुधिरस्याढकं, वसाया अर्द्धाढकं, मस्तुलुङ्गस्य प्रस्थः, मूत्र-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्याढकं, पुरीषस्य प्रस्थः, पित्तस्य कुडवः । श्लेष्मणः कुडवः, शुक्रस्यार्द्धकुडवः । यद् यदा दुष्टं भवति तत् तदा अतिप्रमाणं भवति । पञ्चकोष्ठः पुरुषः, षट्कोष्ठा स्त्रियः, नवस्रोताः पुरुषः, एकादशस्रोतसः स्त्रियः, पञ्च पेशीशतानि पुरुषस्य, त्रिंशदूनानि स्त्रियाः, विंशत्यूनानि पंडगस्य॥१६॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस जन्तु के शरीर में पित्त को धारण करने वाली नाड़ियाँ २५ होती हैं । २५ ही कफ को धारण करने वाली होती हैं, शुक्रधारिणी नाड़ियाँ दश होती हैं । ७०० शिरायें पुरुषों के शरीर में और ३० कम ७०० स्त्रियों के शरीर में और २० कम सात सौ नपुंसक के शरीर में होती हैं । हे आयुष्मन् इस मनुष्य के शरीर में रक्त एक आढक होता है । चर्बी आधा आढक होती है। फिफ्फिस एक प्रस्थ होता है । मूत्र एक आढक होता है । पुरीष एक प्रस्थ होता है । पित्त एक कुडव होता है । श्लेष्म एक कुडव होता है। शुक्र आधा कुडव होता है । इनमें से जो जब विकृत होता है तब उनके प्रमाण में न्यूनाधिकता होती है । पुरुष के शरीर में पांच कोष्ठक और स्त्री के शरीर में छः कोष्ठक होते हैं । पुरुष के शरीर में नौ छिद्र और स्त्री के शरीर में ११ छिद्र होते हैं । पुरुष के शरीर में ५०० पेशियाँ होती हैं और स्त्री के शरीर में ३० कम ५०० एवं नपुंसक के शरीर में २० कम ५०० पेशियाँ होती हैं ।

अब्भिंतरंसि कुणिमं जो, परिअत्तेउ बाहिरं कुज्जा । तं असुइं दट्ठूणं, सयावि जणणी दुगुंछिया ॥८३॥

छाया—अभ्यन्तरे कुणिमं यत्, परावर्त्य बहिः कुर्य्यात् । तमशुचिं दृष्ट्वा, स्वकापि जननी जुगुप्सेत ॥८३॥

भावार्थ—इस शरीर में जो अपवित्र मांस है उसको यदि शरीर में से बाहर निकाला जाय तो अपनी माता भी उसे देख कर घृणा करेगी, दूसरे की तो बात ही क्या है ? ॥८३॥

माणुस्सयं सरीरं, पूइयमं मंससुक्कहड्डेणं । परिसंठवियं सोहइ, अच्छायणगंधमल्लेणं ॥ ८४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—मानुष्यकं शरीरं, पूतिमद् मांसशुक्रास्थिभिः । परिसंस्थापितं शोभते, आच्छादन गन्धमाल्येन ॥८४॥

भावार्थ—यह मनुष्य का शरीर अपवित्र है । मांस, शुक्र और हड्डी से बना हुआ है । यह वस्त्र, गन्ध और माला धारण करने से सुशोभित होता है ॥८४॥

इमं चेव य सरीरं सीसघडीमेय मज्जमंसट्ठियमत्थुलुंग सोणियवालुंडयचम्मकोसनासियसिंघाणयधीमलालयं अमणुण्णगं सीसघडीभंजियं गलंतणयणं कण्णोट्ठगंडतालुयं अवालुयाखिल्ल चिक्कणं चिलिचिलियं दंतमलमइलं बीभच्छदरिसणिज्जं अंसलगबाहुलगअंगुली अंगुट्ठगनहसंधि संघाय संधियमिणं बहुरसियागारं नालखंधच्छिरा अणेग एहारु बहुधमणिसंधिनद्धं पागडउदरकवालं कक्खनिक्खुडं कक्खगकलियं दुरंतं अट्ठिधमणि संताण संतयं सव्वओ समंता परिसवंतं य रोमकूवेहिं सयं असुई सभावओ परमदुग्गंधि कालिज्जय अंतपित्तजरहियं य फोप्फसफेफसपिलिहोदरगुज्झकुणिम नवछिड्डधिविधिवंतहियय दुरहिपित्तसिंभमुत्तोसहाययणं सव्वओ दुरंतं गुज्झोरुजाणुजंघापाय संघाय संधियं असुइ कुणिम गंधि, एवं चिंतिज्जमाणं बीभच्छदरिसणिज्जं अधुवं अनिययं असासयं सडण पडणविद्धंसणधम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स चइयव्वं निच्छयओ सुट्ठुजाण एयं आइनिहणं एरिसं सव्वमणुयाणं देहं एस परमत्थओ सब्भाओ । (सूत्रम् १७)

छाया—इदञ्चैव शरीरं शीर्षघटी मेदोमज्जा मांसमस्तुलुङ्गशोणितवालुण्डक चर्मकोश नासिकामलधिङ्मूलालयं अमनोज्ञकं शीर्षघटीभञ्जितं गलन्नयनं कर्णौष्ठगण्डतालुकं अवालुखिल्लचिक्कणं चिगचिगायमानं दन्तमलमलिनं बीभत्सदर्शनीयं अंसबाहुङ्गुल्यङ्गुष्ठनखसन्धिसङ्घातसन्धितमिदं बहुरसिकागारं बालस्कन्धशिराऽनेक स्नायु बहुधमनि सन्धिनद्धं प्रकटोदरकपालं कक्षनिष्कुटं कक्षागकलितं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुरन्त अस्थिधमनि सन्तान सन्ततं सर्वतः समस्तात् परिस्रवच्च रोमकूपैः स्वयमशुचि स्वभावतः परमदुर्गन्धि कालिज्जकान्त्रपित्त ज्वरहृदय फोप्फस फिप्फिस प्लीहोदरगुह्य कृमि नवच्छिद्र द्रिग द्रिगाय मान हृदयं दुर्गन्ध पित्तसिंभमूत्रौषधायतनं सर्वतो दुरन्तं गुह्योरुजानुजङ्घापाद सङ्घातसन्धितम् अशुचिकुणिमगन्धि एवं चिन्त्यमानं बीभत्सदर्शनीयं अध्रुव मनियतमशाश्वतं शटनपटनविध्वंसनधर्मं पश्चाद्वा पूर्वं वा अवश्यं त्यक्तव्यं निश्चयतः सुष्ठु जानीहि एतद् आदिनिधनम् । इदृशः सर्वमनुजानां देहः । एष परमार्थतः स्वभावः ॥ सूत्रं १७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्य का शरीर शिर की खोपड़ी, मेद, मज्जा, मांस, शिर का स्नेह, रक्त, वालुण्डक (शरीर के भीतर का एक अवयव) चर्मकोश, नाक का मल और विष्ठा आदि दूषित मलों का घर है। यह सुन्दरता से वर्जित है। यह शिर की खोपड़ी के मल तथा नेत्र, कान, ओष्ठ, कपोल और तालु के मलों से परिपूर्ण है इसलिये यह अभ्यन्तर प्रदेश में अत्यन्त पिच्छिल है तथा धूप आदि लगनेपर बाहर भी पसीना होजाने से पिच्छिल होजाता है। दांतों के मल से यह और अधिक मलिन है। जब रोग आदि के द्वारा मनुष्य कृश हो जाता है उस समय इस शरीर का दृश्य और अधिक बीभत्स (घृणास्पद) हो जाता है। भुजा, अङ्गुलियाँ, अङ्गुष्ठ और नखों की सन्धियों से यह शरीर जोड़ा हुआ है। अनेक प्रकार के तरल रसों से यह परिपूर्ण है। तथा कंधे की नसें और हड्डियों को बाँध रखने वाली अनेक शिरायें एवं हड्डियों की सन्धियों से यह शरीर बँधा हुआ है। इस शरीर का उदर कडाह के समान है, जिसे सभी लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। जैसे पुराने सूखे वृक्ष में कोटर होता है उसी तरह दोनों भुजाओं के मूल में कक्ष प्रदेश है। उस कक्ष प्रदेश में बुरे लगने वाले बाल भरे होते हैं। इसका विनाश बहुत बुरी तरह होता है। यह हड्डियों और शिराओं के समूह से भरा हुआ है। जिस तरह सच्छिद्र घडे से जल सदा निकलता रहता है इसी तरह इस शरीर के रोम कूपों से हमेशा पसीने का जल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकलता रहता है। इसके सिवाय नाक आदि छिद्रों से भी मल निकलता रहता है। यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र और दुर्गन्धि से परिपूर्ण है। इसमें कलेजा, आँतड़ी, पित्त, हृदय, फेफड़ा, लीहा और उदर ये गुप्त मांस पिण्ड होते हैं एवं नव छिद्र होते हैं। इस शरीर में हृदय बराबर धड़कता रहता है। यह पित्त, श्लेष्म और मूत्र आदि दुर्गन्ध वाले पदार्थों से तथा खाये हुए औषधों से परिपूर्ण होता है। इस शरीर के सभी भागों में अन्त का भाग बुरा होता है तथा इस का विनाश बहुत ही बुरी तरह होता है। गुदा, उरू, जानु, जङ्घा और पैरों के समूह से यह शरीर जुड़ा हुआ है। यह अशुचि तथा मांस के गन्ध से युक्त है। यद्यपि यह अज्ञानवश अच्छा दीखता है तथापि विचार करने पर भयङ्कर रूप युक्त है। यह अध्रुव, अशाश्वत और अनियत है यानी विनाशी है। कुष्ट आदि व्याधि उत्पन्न होने पर इसकी अंगुलियाँ गल कर गिर जाती हैं तथा तलवार आदि का घात होने पर भुजा आदि अङ्ग कट जाते हैं एवं क्षय होजाना इसका स्वभावतः सिद्ध है। यह कुछ दिन के पश्चात् या पूर्व किसी दिन अवश्य ही नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य शरीर आदि और अन्त वाला है। जैसा पहले वर्णन किया गया है वैसा ही इसका स्वभाव है॥

सुक्कंम्मि सोणियंमि य, संभूओ जणणि कुच्छि मज्झंमि। तं चेव असिज्झरसं, नवमासे घुंटियं संतो॥८५॥

शुक्रे शोणिते च सम्भूतः जननी कुक्षिमध्ये। तच्चैवामेध्यरसं, नवसु मासेषु पिबन् सन्॥ ८५॥

भावार्थ—माता के उदर में शुक्र और शोणित के संयोग से यह उत्पन्न होकर उसी अपवित्र रस का पान करता हुआ नव मास तक गर्भ में स्थिर रहता है॥ ८५॥

जोणीमुहनिप्फिडिओ, थणगच्छीरेण वड्ढिओ जाओ। पगई असिज्झमइओ, कह देहो धोइउं सक्को॥८६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—योनिमुखनिष्फिटितः, स्तनकक्षीरेण वर्धितो जातः । प्रकृत्या मेध्यमयः कथं देहो धावितुं शक्यः ॥ ८६ ॥

भावार्थ—यह माता की योनि से निकल कर बाहर आया है और स्तन पान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ है। यह स्वभाव से ही अपवित्रतामय है, इसे धोकर शुद्ध करना शक्य नहीं है ॥ ८६ ॥

हा असुइसमुप्पण्णा य, निग्गया य जेण चेव दारेणं । सत्ता मोह पसत्ता, रमंति तत्थेव असुइ दारंमि ॥८७॥

छाया—हा अशुचि समुत्पन्नाश्च, निर्गताश्च येन चैव द्वारेण । सत्त्वाः, मोहप्रसक्ताः रमन्ते तत्रैवाशुचिद्वारे ॥ ८७ ॥

भावार्थ—हा, शोक ? यह प्राणी अपवित्रतामय स्थान में उत्पन्न होकर जिस द्वार से निकल कर बाहर आया है, मोहवश युवा अवस्था में उसी अशुचि द्वार में रमण करता है ॥ ८७ ॥

किह ताव घर कुडीरी, कविसहस्सेहिं अपरितंतेहिं । वण्णिजइ असुइबिलं, जघणंति सकज्जमूढेहिं ॥८८॥

छाया—कथन्तावत् गृहकुड्याः, कविसहस्रैरपरितान्तैः । वर्ण्यते ऽशुचि बिलं, जघनमिति स्वकार्य्यमूढैः ॥ ८८ ॥

भावार्थः—जो अपवित्रता से परिपूर्ण बिल (योनि) से संयुक्त है ऐसे स्त्री के जघन को कविजन अश्रान्त भाव से क्यों कर वर्णन करते हैं ? वस्तुतः वे अपने स्वार्थवश मूढ हो रहे हैं ॥ ८८ ॥

रागेण न जाणंति, वराया कलमलस्स निद्धमणं । ताणं परिणंदंता, फुल्लं नीलुप्पलवणं व ॥८९॥

छाया—रागेण न जानन्ति, वराकाः कलमलस्य निर्धमनम् । तत् परिनन्दन्ति, फुल्लं नीलोत्पलवनमिव ॥ ८९ ॥

भावार्थः—विचारे कवि रागवशीभूत होकर नहीं जानते हैं कि— यह स्त्री का जघन अपवित्र मल की थैली है। इसीलिये अत्यन्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषयासक्त वे इसका वर्णन करते हैं और प्रफुल्लित नीलकमल के समान इसको मनोहर बतलाते हैं ॥ ८६ ॥

कित्तियमित्तं वण्णे, अमिज्झमइयंमि वच्चसंघाए । रागो हु न कायव्वो, विरागमूले सरीरंमि ॥६०॥

छाया—कियन्मात्रं वर्णये, अमेध्यमये वर्चस्कसङ्घाते । रागो हि न कर्त्तव्यः, विरागमूले शरीरे ॥ ६० ॥

भावार्थः—कहां तक वर्णन किया जाय, यह शरीर अपवित्रता से भरा है, यह विष्ठा की राशि है तथा घृणा के योग्य है । अतः बुद्धिमान् पुरुष को इसमें राग नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥

किमिकुलसय संकिण्णे, असुइमचुक्खे असासयमसारे । सेय मल पुव्वडंमी, निव्वेयं वच्चह सरीरे ॥६१॥

छाया—कृमिकुलशतसङ्कीर्णे, अशुच्यचुक्षे अशाश्वतासारे । स्वेदमलपूर्वके, निर्वेदं व्रजत शरीरे ॥ ६१ ॥

भावार्थः—यह शरीर सैकड़ों कृमिकुल यानी कीड़ों से भरा हुआ है तथा अपवित्र मल से परिपूर्ण परम अशुद्ध है । एवं विनाशी और साररहित है । दुर्गन्धपूर्ण स्वेद से भीगा हुआ है । अतः मनुष्य को इससे विरक्त रहना चाहिये ॥ ६१ ॥

दंत मल कण्णगूहगसिंघाण मले य, लालमलबहुले । एयारिसे बीभच्छे, दुगुंछणिज्जंमि को रागो ॥६२॥

छाया—दन्तमलकर्णगूथक सिंघाण मले च, लालमलबहुले । एतादृशे बीभत्से, जुगुप्सनीये को रागः ॥ ६२ ॥

भावार्थः—यह शरीर दाँतों के मल, कान के मल, नाक के मल और विष्ठा के मल से परिपूर्ण है । तथा लाला यानी मुख के मलसे भरा हुआ है । अतः इस प्रकार बीभत्स (घृणास्पद) और निन्दनीय शरीर में क्या प्रेम किया जाय ?

को सडण पडण विद्धंकिरिण, विसण चयण मरण धम्मंमि । देहंमि अहिलासो, कुहिय कडिण कट्ठभूयंमि॥६३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—कः शटन पतन विकिरण विध्वंसन च्यवन मरणधर्मे । देहेऽभिलाषः, कुथित कठिन काष्ठ भूते ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यह शरीर कुष्ट आदि व्याधि होने पर गल कर गिर जाता है। तलवार आदि के प्रहार होने पर कट कर गिर जाता है। यह स्वभाव से ही नश्वर है। रोग आदि होने पर क्षीण हो जाता है। इसके हाथ पैर आदि अवयव नष्ट हो जाते हैं तथा एक दिन पूर्ण रूपेण यह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सड़े हुए कठिन काष्ठ की तरह इस शरीर में अभिलाष रखना क्या है ? ॥ ६३ ॥

कागसुणगाण भक्खे, किमिकुलभत्ते य वाहिभत्ते य। देहंमि मच्छभत्ते, सुसाणभत्तम्मि को रागो ॥६४॥

छाया—काकश्वानयोर्भक्ष्ये, कृमिकुल भक्तेच व्याधिभक्ते च । देहे मत्स्यभक्ते, श्मशानभक्ते च को रागः ॥ ६४ ॥

भावार्थः—यह शरीर काक और कुत्तों का भक्ष्य है तथा कीड़े, व्याधि और मछलियों का भी भोजन है तथा श्मशान में रहने वाले गीध आदि का भक्ष्य है ऐसे शरीर में राग रखना क्या है ? ॥ ६४ ॥

असुइ अमिज्झ पुण्णं कुणिमकलेवर कुडिं परिसवंति। आगंतुयसंठवियं, नवछिड्डमसासयं जाणे। ॥६५॥

छाया—अशुचि अमेध्यपूर्णं, कुणिम कलेवर कुटीं परिस्रवदिति । आगन्तुकसंस्थापितं, नवच्छिद्रमशाश्वतं जानीहि ॥ ६५ ॥

भावार्थः—यह शरीर अपवित्र है, अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है। मांस और हड्डी का घर है। चारों ओर इस शरीर में मल निकलता रहता है। माता पिता के रज वीर्य से उत्पन्न हुआ है। नव छिद्रों से यह युक्त है। यह स्थिर नहीं हैं ऐसा जानो ॥ ६५ ॥

पिच्छसि मुहं सतिलयं, सविसेसं रायएण अहरेणं। सकडक्खं सवियारं, तरलच्छिं जुव्वणित्थीए ॥६६॥

छाया—पश्यसि मुखं सतिलकं, सविशेषं रागवताधरेण । सकटाक्षं सविकारं, तरलाक्षं युवतिस्त्रियाः ॥ ६६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—तुम तिलक और कुंकुम आदि के लेपन से सुशोभित तथा पान की लालिमा से रञ्जित ओष्ठ से मनोहर युवती स्त्री के मुख को काम विकार के साथ सकटाक्ष और चञ्चल नेत्रों द्वारा देखते हो ॥ ६६ ॥

पिच्छसि बाहिरमट्ठं, न पिच्छसि उज्जरं कलिमलस्स । मोहेण नच्चयंतो, सीसघडी कंजियं पियसि ॥६७॥

छाया—पश्यसि बाह्यमर्थं, न पश्यसि मध्यगतं कलिमलस्य । मोहेन नृत्यन् शीर्षघटी काञ्जिकं पिबसि ॥ ६७ ॥

भावार्थ—हे भाई ! तुम बाहर के पदार्थ को देखते हो, परन्तु अन्दर अपवित्र मल भरा हुआ है उसे नहीं देखते। विषय के मोहवश नाचने लगते हो और अपवित्र मस्तक के रस को चुम्बनादि द्वारा पान करते हो ॥ ६७ ॥

सीसघडी निग्गालं, जं निट्ठहसि दुगुंछसि जं य । तं चेव रागरत्तो मूढो, अइमुच्छिओ पियसि ॥६८॥

छाया—शीर्षघटी निर्गालं, यन्निष्ठीवसि जुगुप्ससे यच्च । तच्चैव रागरक्तो, मूढोऽतिमूर्च्छितः पिबसि ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जिस मुख के थूक को तुम स्वयं बाहर थूक देते हो और जिससे घृणा करते हो उसी निन्दित पदार्थ को कामासक्त तथा अत्यन्त मोहित होकर तीव्र आसक्ति के साथ पान करते हो ॥ ६८ ॥

पूइय सीसकवालं, पूइयनासं य पूइदेहं य । पुइयछिड्डविछिड्डं, पुइयचम्मेण य पिणद्धं ॥ ६६ ॥

छाया—पूतिकशीर्षकपालं, पूतिकनासञ्च पूतिदेहञ्च । पूतिकच्छिद्रविवृद्धं, पूतिकचर्मणा च पिनद्धम् ॥ ६६ ॥

भावार्थ—शिर की खोपड़ी अपवित्र है, नासिका अपवित्र है, सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग अपवित्र हैं तथा छोटे छोटे छिद्र भी अपवित्र हैं तथा अपवित्र चमड़े में यह समस्त शरीर ढका हुआ है ॥ ६६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंजण गुण सुविसुद्धं, एहाणुव्वट्टणगुणेहिं सुकुमालं, पुप्फुम्मीसियकेसं, जणेइ बालस्स तं रागं ॥ १०० ॥

छाया—अञ्जनगुणसुविशुद्धं, स्नानोद्वर्तनगुणैः सुकुमारं । पुष्पोन्मिश्रितकेशं, जनयति बालस्य तद्रागम् ॥ १०० ॥

भावार्थः—आँखें अञ्जन लगाने से तथा अङ्ग प्रत्यङ्गों में भूषण धारण करने से एवं स्नान उद्वर्तन आदि शरीर के संस्कारों से तथा केशों में पुष्प धारण करने से कृत्रिम सुन्दरता से पूर्ण नायिका का मुख अज्ञानी जीव को राग उत्पन्न करता है ॥ १०० ॥

जं सीसपूरउत्ति य, पुप्फाइं भणंति मंदविन्नाणा । पुप्फाइं चिय ताइं, सीसस्स य पूरयं सुणह ॥ १०१ ॥

छाया—यानि शीर्षपूरकानीति च, पुष्पाणि भणन्ति मन्दविज्ञानाः । पुष्पाण्येव तानि, शीर्षस्य च पूरकं शृणुत ॥ १०१ ॥

भावार्थः—कामासक्त पुरुष जिन पुष्पों को मस्तक का पूरक यानी भूषण बतलाते हैं वे पुष्प वस्तुतः मस्तक के पूरक नहीं हैं वे तो पुष्प ही हैं। मस्तक के पूरक यानी पूर्ण करने वाले क्या पदार्थ हैं ? सो मैं बतलाता हूँ आप सुनें ॥ १०१ ॥

मेओ वसा य रसिया, खेल सिंघाण ए य छुभ एयं । अह सीस पूरओ मे, नियग सरीरंमि साहीणो ॥ १०२ ॥

छाया—मेदो वसा च रसिका, खेल सिंघानकश्च क्षिपैतान् । अथ शीर्षपूरको भवतां, निजक शरीरे स्वाधीनः ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मेद, चर्बी, रसिका (पीव), खंखार और नाक का मल ये सब आपके शिर को पूरण करने वाले हैं, ये सब आपके आधीन हैं अतः अपने शरीर के ऊपर इन्हें उठा उठा कर आप डाल लीजिये । बस इससे अपने शिर को भूषित हुआ समझ लीजिये ॥ १०२ ॥

सा किर दुप्पडिपूरा, वच्चकुटी दुप्पया नवच्छिद्दा । उक्कडगंधविलित्ता, बालजणो अइमुच्छियं गिद्धो ॥१०३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—सा खलु दुष्प्रतिपूरा, वर्चस्कुटी द्विपदा नवच्छिद्रा । उत्कटगन्धविलिप्ता, बालजनोऽतिमूर्च्छितं गृद्धः ॥१०३॥

भावार्थ—यह शरीर विष्ठा की कुटी है। इसका पूरण करना अशक्य है। यह दो पैर और नव छिद्रों से युक्त है। इसमें असह्य दुर्गन्ध भरा हुआ है तथापि अज्ञानी जन इस कुत्सित शरीर में अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं ॥१०३॥

जं पेमरागरत्तो, अवयासेऊण गूढमुत्तोलिं । दंतमलचिक्कणंगं, सीसघडीकंजियं पियसि ॥१०४॥

छाया—यस्मात् प्रेमरागरक्तः, अवकाश्य गूढ मुत्तोलिम् । दन्तमलचिक्कणाङ्गं, शीर्षघटीकाञ्जिकं पिबसि ॥ १०४ ॥

भावार्थ—अज्ञानी जीव कामराग से अनुरञ्जित होकर नायिका की योनि और अपने लिंग को उघाड़ कर दाँत तथा शरीर के मल से चिकण शरीर का आलिंगन करते हैं। तथा शिर के खट्टे अपवित्र रस को पान करते हैं ॥ १०४ ॥

दंतमुसलेसु गहणं, गयाण मंसे य ससयमीयाणं । बालेसुं चमरीणं, चम्मणहे दीवियाणं य ॥ १०५ ॥

छाया—दन्तमुशलेषु ग्रहणं, गजानां मांसे च शशकमृगाणां । बालेषु च चमरीणां, चर्मनखे द्वीपिकानाञ्च ॥१०५॥

भावार्थ—मनुष्य गण दाँतों के लिये हाथी को और मांस के लिये शशक और मृग को तथा बाल के लिये चमरी गाय को और चर्म नख के लिये व्याघ्र को ग्रहण करते हैं। अतः इनके अंग तो सर्वसाधारण के भोग के काम में आते हैं परन्तु मनुष्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग भोग में नहीं आते हैं। इसलिए मनुष्य को इस शरीर में आदर न रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ १०५ ॥

पूइयकाए य इहं, चवणमुहे निच्चकालावीसत्थो । आइक्खसु सब्भावं, किम्मिसि गिद्धो तुमं मूढ ॥१०६॥

छाया—पूतिक काये चेह, च्यवनमुखे नित्यकालविश्वस्तः । आख्याहि सद्भावं, किमसि गृद्धस्त्वं मूढ ! ॥१०६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—हे मूर्ख! यह शरीर अपवित्र पदार्थों का घर है तथा मरणशील है। इसमें सदा विश्वास करते हुए तुम क्यों आसक्त हो रहे हो? इसका सत्य कारण बताओ ॥ १०६ ॥

दंतावि अकज्जकरा, बाला वि य वड्ढमाण वीभच्छा। चम्मंवि य वीभच्छं, भण किं तंसि तं गओ रागं ॥१०७॥

छाया—दन्ता अप्यकार्य्यकराः, बाला अपि वर्धमानाः बीभत्साः। चर्माऽपि बीभत्सं, भण किं तस्मिन् त्वं गतो रागम् ॥१०७॥

भावार्थः—दाँत भी किसी काम के नहीं हैं यानी अपवित्र हैं तथा बाल भी बढ़े हुए घृणा के योग्य ही हैं एवं चर्म भी घृणास्पद है फिर बतलाओ तुम इस शरीर में क्यों राग रखते हो ? ॥ १०७ ॥

सिंभे पित्ते मुत्ते, गूहंमि य वसाइ दंत कुंडीसु। भणसु किमत्थं तुज्झं, असुईमि विवड्ढिओ रागो ॥ १०८ ॥

छाया—सिम्भे पित्ते, मूत्रे, गूथे च वसायां दन्तकुडचासु। भण किमर्थं तवाशुचौ, विवर्धितः रागः ॥ १०८ ॥

भावार्थः—यह शरीर कफ, पित्त, मूत्र, विष्टा, चर्बी और हड्डियों का घर है। बतलाओ इस अपवित्र वस्तु में तुम्हारा राग क्यों अधिक हुआ है ॥ १०८ ॥

जंघट्ठियासु ऊरू, पइट्ठिया तट्ठिया कडी पिट्ठी। कडियट्ठिवेढियाइं, अट्ठारसपिट्ठि अट्ठीणि ॥ १०९ ॥

छाया—जङ्घास्थिकयोरूरू, प्रतिष्ठितौ तत्स्थिता कटिपृष्ठिः। कटचस्थि वेष्ठितान्यष्टादश पृष्ठ्यस्थीनि ॥ १०९ ॥

भावार्थः—जङ्घा की हड्डियों के ऊपर ऊरु स्थित है और ऊरु के ऊपर कटिभाग स्थित है तथा कटि के ऊपर पृष्ठभाग स्थित है और पृष्ठ में अठारह हड्डियाँ वेष्ठित हैं। शरीर का यही स्वरूप है ॥ १०९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दो अच्छि अट्ठियाइं, सोलस गीवट्ठिया मुणेयव्वा । पिट्ठी पइट्ठियाओ, वारस किल पंसुली हुँति ॥ ११० ॥

छाया—द्वे अक्ष्यस्थिनी, षोडशग्रीवास्थीनि ज्ञातव्यानि । पृष्ठिप्रतिष्ठिताः द्वादश, किल पंशुल्यो भवन्ति ॥ ११० ॥

भावार्थः—दो नेत्र की हड्डियाँ होती हैं और सोलह ग्रीवा की हड्डियाँ होती हैं । एवं पीठ में स्थित बारह पसलियाँ होती हैं ।

अट्ठिय कढिणे, सिरण्हारुबंधणे मंसचम्मलेवंमि । विट्ठाकोट्ठागारे, को वच्च घरोवमे रागो ॥ १११ ॥

छाया—अस्थिकठिने, शिरास्नायुबन्धने मांसचर्मलेपे । विष्ठाकोष्ठागारे, को वर्चोगृहोपमे रागः ? ॥ १११ ॥

भावार्थः—हड्डियों के होने से जो कठिन है यथा शिरा और नसों के द्वारा जो बँधा हुआ है एवं चमड़ा और मांस से जो लिप्त है, तथा विष्ठा का जो कोष्ठागार है ऐसे पाखाने के घर के तुल्य इस शरीर में राग करना क्या है ? ॥ १११ ॥

जह नाम वच्चकूवो, णिच्चं भिणिभिणिभणंतकायकली । किमिएहिं सुलुसुलायइ, सोएहिं य पूइयं वहइ ॥ ११२ ॥

छाया—यथानाम वर्चःकूपो, नित्यं भिणिभिणिभणत्काकलि । कृमिभिः सुलुसुलायते, स्रोतोभिश्च पूतिकं वहति ॥ ११२ ॥

भावार्थः—जैसे विष्ठा से भरा हुआ कुआँ होता है, उसके पास काँव काँव करते हुए कौए परस्पर लड़ते रहते हैं और विष्ठा के कीड़े उसके अन्दर चलते रहते हैं जिससे सुल सुल शब्द होता रहता है तथा बदबूदार स्रोत बहते रहते हैं । उस कूप के समान ही इस शरीर की दशा रोगी अवस्था में और मरने पर होती है ॥ ११२ ॥

उद्धियणयणं खगमुहविकड्ढियं, विपइण्णबाहुलयं । अंत विकड्ढियमालं, सीस घडी पागडी घोरं ॥ ११३ ॥

छाया—उद्धतनयनं, खगमुखविकर्षितं विप्रकीर्णबाहुलतम् । अन्तर्विकर्षितमालं, शीर्षघटी प्रकटघोरम् ॥ ११३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—मरने के बाद इस शरीर के नेत्र को निकाल कर पक्षी अपनी चोंच से नोंच लेते हैं। लता की तरह भुजा पृथिवी पर पड़ी रहती है। गीदड़ अँतडी निकाल लेते हैं। खोपड़ी घड़े के समान पड़ी रहती है। उस समय यह शरीर बहुत ही भयङ्कर दिखाइ देता है ॥ ११३ ॥

भिणिभिणिभणंतसद्दं, विसप्पियं सुलुसुलंत मंसोडं । मिसिमिसिमिसंतकिमियं, थिविथिविथिवियंतबीभच्छं ॥ ११४ ॥

छाया—भिणिभिणिभणच्छब्दं, विसर्पितं सुलुसुलत्मांसपुटम् । मिसिमिसिमिसत्कृमिकं, थिविथिविथिवदन्त्रबीभत्सम् ॥ ११४ ॥

भावार्थः—जब यह प्राणी मर जाता है तब इसके मृत कलेवर के ऊपर मक्खियाँ भिन् भिन् करती हैं, और अङ्ग प्रत्यङ्ग ढीले होकर सूज जाते है। मांस समूह सड़ कर सल सल करता है और उसमें कीड़े उत्पन्न होकर चलते हैं जिससे मिसमिस का शब्द होता है और अँतड़ी सड़ कर सलसल करती है। इस कारण वह कलेवर बहुत ही घृणितरूप में दीखता है ॥ ११५ ॥

पागडियपंसुलीयं, विगरालं सुक्कसंधिसंघायं । पडियं निच्चेयणयं, सरीर मेयारिसं जाण ॥ ११५ ॥

छाया—प्रकटित पांशुलिकं, विकरालं शुष्कसन्धिसङ्घातम् । पतितं निश्चेतनकं, शरीर मेतादृशं जानीहि ॥ ११५ ॥

भावार्थः—मरण के पश्चात् यह शरीर किसी स्थान में अचेतन होकर पड़ा रहता है, इसकी सारी पसलियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। सन्धियाँ सूखी हुई होती हैं इसलिये यह बहुत ही भयङ्कर दिखाई देता है। हे भाई ! तुम शरीर को इसी तरह का समझो ॥ ११५ ॥

वच्चाउ असुइयरं, नवहिं सोएहिं परिगलंतेहिं । आमगमल्लगरूवे, निव्वेयं वच्चह सरीरे ॥ ११६ ॥

छाया—वर्चस्कादशुचितरं, नवभिः स्रोतोभिः परिगलद्भिः । आमक मल्लकरूपे, निर्वेदं व्रजत शरीरे ॥ ११६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थः—यह शरीर विष्ठा के संसर्ग से तथा नव द्वारों से मल के निकलते रहने से महा अशुद्ध है। यह कच्चे घड़े के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है, इसलिये इससे विरक्त होजाना चाहिये ॥ ११६ ॥

दो हत्था दो पाया, सीसं उच्चंपियं कबंधंमि । कलमल कोट्ठागारं, परिवहसि दुयादुयं वच्चं ॥ ११७ ॥

छाया—द्वौ हस्तौ द्वौ पादौ, शीर्षं उच्चम्पितः कबन्धे । कलमलकोष्ठागारं, परिवहसि द्रुतं द्रुतं वर्चः ॥ ११७ ॥

भावार्थः—दो हाथ दो पैर और शिर इस धड़ में जोड़ा हुआ है। यह मल का कोष्ठागार है। तुम विष्ठा को लिये हुए क्यों शीघ्रता पूर्वक विचरते हो ? ॥ ११७ ॥

तं य किर रूववंतं, वच्चंतं रायमग्गमोइण्णं । परगंधेहिं सुगंधयं, मण्णंतो अप्पणो गंधं ॥ ११८ ॥

छाया—तच्च किल रूपवद्, व्रजद्राजमार्गं प्राप्तम् । परगन्धैः सुगन्धकं, मन्यमान आत्मनो गन्धम् ॥ ११८ ॥

भावार्थः—जिसका स्वरूप बताया गया है ऐसे इस शरीर को राजमार्ग के ऊपर जाते हुए देख कर तुम इसे रूपवान् मानते हो तथा अन्य पदार्थों के गन्ध से सुगन्धित बने हुए इसके गन्ध को निज का गन्ध मानते हो ॥ ११८ ॥

पाडलचंपयमल्लिय अगरुयचंदणतुरुक्कवामीसं । गंध समोयरन्तं, मण्णंतो अप्पणो गंधं ॥ ११९ ॥

छाया—पाटलचम्पकमल्लिकागुरुकचन्दनतुरुष्क व्यामिश्रम् । गन्धं समास्तरन्तं, मन्वान आत्मनो गन्धम् ॥ ११९ ॥

भावार्थः—गुलाब, चम्पा, चमेली, अगर, चन्दन और कस्तुरी के संयोग से उत्पन्न गन्ध चारों तरफ फैल रहा है, उसे तुम अपना गन्ध मान कर प्रसन्न होते हो ॥ ११९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुहवाससुरहिगंधं, वायसुहं अगरुगंधियं अंगं । केसा एहाणसुगंधा, कयरो ते अप्पणो गंधो ॥ १२० ॥

छाया—शुभवाससुरभिगन्धं, वातसुखमगुरुगन्धितमङ्गम् । केशाः स्नानसुगन्धाः, कतरस्ते आत्मनो गन्धः ॥ १२० ॥

भावार्थः—तुम्हारा अङ्ग सुगन्धित चूर्ण लगाने से तथा अगर के धूप से धूपित होने से पर-निमित्तवश उत्तम गन्ध युक्त प्रतीत होता है। पवन के संयोग से वह शीतल सुखदायी प्रतीत होता है एवं तुम्हारे केश स्नान करने के पश्चात् सुगन्ध तैलादि के लेपन से सुगन्धित हो रहे हैं। बताओ इनमें तुम्हारा कौनसा अपना गन्ध है ? ॥ १२० ॥

अच्छिमलो कण्णमलो, खेलो सिंघाणओ य पूओ य । असुई मुत्त पुरीसो, एसो ते अप्पणो गंधो ॥ १२१ ॥

छाया—अक्षिमलः कर्णमलः, खेलः सिंहानकश्च पूतिकश्च । अशुची मूत्रपुरीषौ, एष ते आत्मनो गन्धः ॥ १२१ ॥

भावार्थः—आँखों का मल, कानों का मल, खंखार, नाक का मल, पीव (रस्सी) और अशुचि मूत्र और विष्ठा ये ही सब तुम्हारे अपने गन्ध हैं ॥ १२१ ॥

जाओ चिय इमाओ इत्थियाओ अणेगेहिं कइवर सहस्सेहिं विविहपासपडिबद्धेहिं कामरागमोहेहिं वण्णियाओ ताओ वि एरिसाओ, तंजहा, १ पगइविसमाओ, २ पियवयणवल्लरीओ, ३ कइयवपेमगिरितडीओ, ४ अवराहसहस्स घरणीओ, ५ पभवो सोगस्स, ६ विसासो बलस्स, ७ सूणा पुरिसाणं, ८ णासो लज्जाए, ९ संकरो अविणयस्स, १० णिलयो णियडीणं, ११ खणी वइरस्स, १२ सरीरं सोगस्स, १३ भेओ मज्जायाणं, १४ आसाओ-रागस्स, १५ णिलओ दुच्चरियाणं, १६ माईए

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संमोहो, १७ खलणा णाणस्स, १८ चलणं सीलस्स, १९ विग्घो धम्मस्स, २० अरी साहूणं, २१ दूसणं आयारपंचाणं, २२ आरामो कम्मरयस्स, २३ फलिहो सुखमग्गस्स, २४ भवणं दरिद्दस्स, २५ अवि याओ इमाओ आसीविसो विव कुवियाओ, २६ मत्तगओ विव मयणपरवसाओ, २७ वाग्घीव दुट्ठहिययाओ २८ तणच्छन्न कूवो विव अप्पगासहिययाओ, २९ मायाकारओ विव उवयारसयबंधण पउत्तीओ, ३० आयरियसविहि विव बहुगिज्झ सब्भावाओ, ३१ फुंफुया विव अंतोदहण सीलाओ, ३२ नग्गयमग्गो विव अणवट्ठियचित्ताओ, ३३ अंतो दुट्ठवणो विव कुहियहिययाओ, ३४ किण्हसप्पो विव अविस्ससणिज्जाओ, ३५ संघारो विव छणणमायाओ, ३६ संज्झब्भरागो विव मुहुत्तरागाओ, ३७ समुद्द वीचि विव चलस्सब्भावाओ, ३८ मच्छो विव दुप्परियत्तण सीलाओ, ३९ वाणरो विव चलचित्ताओ, ४० मच्चू विव निव्विसेसाओ, ४१ कालो विव णिरणुकंपाओ, ४२ वरुणो विव पास हत्थाओ, ४३ सलिल मिव णिण्णगामिणीओ, ४४ किवणो विव उत्ताण हत्थाओ, ४५ णरओ विव उत्तासणिज्जाओ, ४६ खरो विव दुस्सीलाओ, ४७ दुट्ठस्सो विव दुद्दमाओ, ४८ बालो विव मुहुत्तहिययाओ, ४९ अंधयारमिव दुप्पवेसाओ, ५० विसवल्ली विव अणल्लियणिज्जाओ, ५१ दुट्ठगाहा विव वावी अणवगाहाओ, ५२ ठाणभट्ठो विव इस्सरो अप्पसंसणिज्जाओ, ५३ किंपागफलमिव मुहमहुराओ, ५४ रित्त मुट्ठी विव बाललोभणिज्जाओ, ५५ मंस पेसी गहणमिव सोवद्दवाओ, ५६ जलियचुडिली विव अमुच्चमाण दहण सीलाओ, ५७ अरिट्ठमिव दुल्लंघणिज्जाओ, ५८ कूड करिसावणो विव कालविसंवायण सीलाओ, ५९ चंडसीलो विव दुक्खरक्खियाओ, ६० अइविसाओ, ६१ दुगुंच्छियाओ, ६२ दुरुवचाराओ, ६३ अगंभीराओ, ६४ अविस्ससणिज्जाओ, ६५ अणवत्थियाओ, ६६ दुक्ख

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्खियाओ, ६७ दुक्खपालियाओ, ६८ अरइकराओ, ६६ कक्कसाओ, ७० दड्ढवेराओ, ७१ रूव सोहग्गमओमत्ताओ, ७२ भुयगगइकुडिलहिययाओ, ७३ कंतारगइट्ठाण भूयाओ, ७४ कुलसयणमित्तभेयणकारियाओ, ७५ परदोस परगासियाओ, ७६ कयग्घाओ, ७७ बलसोहियाओ, ७८ एगंतहरणकोलाओ, ७६ चंचलाओ, ८० जोइ भंडोवरागो विव मुहराग विरागाओ, ८१ अवि याइं ताओ अंतरंग भंगसयं, ८२ अरज्जुओ पासो, ८३ अदारुया अडवी, ८४ अणलस्स णिलओ, ८५ अइक्खा वेयरणी, ८६ अणामिया वाही, ८७ अवियोगो विप्पलाओ, ८८ अरूव उवसग्गो, ८६ रइवंतो चित्त विब्भमो, ६० सव्वंगओ दाहो, ६१ अणब्भया वज्जासणी, ६२ असलिल प्पवाहो, ६३ समुद्दरओ।

छाया—या एव इमाः स्त्रियः अनेकैः कविवर सहस्रैः विविधपाश प्रतिबद्धैः कामरागमोहैः वर्णिताः। ता अपि ईदृश्यः तद् यंथा—प्रकृतिविषमाः, प्रियवचनवल्लर्य्यः, कैतवप्रेमगिरितटचः, अपराधसहस्रगृहाणि, प्रभवः शोकस्य, विनाशो बलस्य, शून्या पुरुषाणाम्, नाशो लज्जायाः, संकरोऽविनयस्य, निलयो निकृतीनाम्, खनिर्वैरस्य, शरीरं शोकस्य, भेदो मर्य्यादायाः, आश्वासो रागस्य, निलयो दुश्चरितानाम्, मातृकायाः समूहः, स्खलना ज्ञानस्य, चलनं शीलस्य, विघ्नो धर्मस्य, अरिः साधूनाम्, दूषणमाचारोपपचानाम्, आरामः कर्मरजसः, परिघो मोक्षमार्गस्य, भवनं दारिद्रचस्य, अपि चेमाः आशीविष इव कुपिताः, मत्तगज इव मदनपरवशाः, व्याघ्रीव दुष्टहृदयाः, तृणच्छन्नकूप इवाप्रकाशहृदयाः, मायाकारक इवोपचारशतबन्धनप्रयोक्त्र्यः, आचार्य सविधमिव बहु ग्राह्यसद्भावाः, फुंफक इवान्तर्दहनशीलाः, नगमार्ग इवानवस्थितचित्ताः, अन्तर्दुष्टव्रण इव कुथितहृदयाः, कृष्णसर्प इवाविश्वसनीयाः, संहार इव छद्ममायाः, सन्ध्याभ्ररग इव मुहूर्त्त रागाः, समुद्रवीचीव चलस्वभावाः, मत्स्य इव दुष्परिवर्तनशीलाः, वानर इव चलचित्ताः, मृत्युरिव निर्विशेषाः, काल इव निरनुकम्पाः, वरुण इव पाशहस्ताः,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सलिलमिव निम्नगामिन्यः, कृपण इवोत्तान हस्ताः, नरक इव उत्त्रासनीयाः, खर इव दुःशीलाः दुष्टाश्व इव दुर्दमाः, बाल इव मुहूर्त्तहृदयाः, अन्धकार इव दुष्प्रवेशाः, विषवल्लीव अनाश्रयणीयाः, दुष्प्राहा वापी इव अनघगाह्याः, स्थानभ्रष्ट ईश्वर इव अप्रशंसनीयाः, किंपाकफलमिव मुखमधुराः, रिक्तमुष्टिरिव बाललोभनीयाः, मांसपेशीग्रहण मिव सोपद्रवाः, ज्वलितचुटिलीव अमुच्यमान दहनशीलाः, अरिष्टमिव दुर्लङ्घनीयाः, कूटकार्षापण इव कालविसंवादनशीलाः, चण्डशील इव दुःखरक्षिताः, अतिविषादाः, जुगुप्सनीयाः, दुरुपचाराः, अगम्भीराः, अविश्वसनीयाः, अमवस्थिताः, दुःखरक्षिताः, दुःखपालिताः, अरतिकराः, कर्कशाः, दृढवैराः, रूपसौभाग्यमदोन्मत्ताः, भुजगगतिकुटिलहृदयाः, कान्तारगति-स्थानभूताः, कुलस्वजन मित्र भेदनकारिकाः, परदोषप्रकाशिकाः, कृतघ्नाः, बलशोधिकाः, एकान्तहरणकीलाः, चञ्चलाः, ज्योतिर्भारडोपराग इव मुखरागविरागाः, अपि च ताः अन्तरङ्गभङ्गशतं, अरज्जुकः पाशः, अदारुका अटवी, अनलस्य निलयः, अनीत्या वैतरणी, अनामिको व्याधिः, अवियोगो विप्रलापः, अरूप उपसर्गः, रतिमान् चित्राविभ्रमः, सर्वाङ्गको दाहः, अनभ्रका वज्राशनिः, असलिलप्रवाहः, समुद्ररयः।

भावार्थ—अनेक प्रकार के सांसारिक बन्धनों के द्वारा जो बँधे हुए थे तथा कामानुराग से जो अत्यन्त मोहित थे ऐसे हजारों कवियों ने अपने अपने काव्यों में स्त्रियों का वर्णन विस्तार के साथ किया है परन्तु उनका वर्णन सत्य नहीं है। अतः स्त्रियों का यथार्थ स्वरूप बतलाया जाता है—

स्त्रियों का हृदय स्वभाव से ही वक्र (कुटिल) होता है। वे मधुर वचन बोलती हैं परन्तु उनका हृदय मधुर नहीं होता, जैसे वर्षा ऋतु में पहाड़ी नदियाँ बड़ी तेजी के साथ बहती हैं उसी तरह इनमें कपटमय प्रेम का प्रवाह बड़ी तेजी के साथ बहता रहता है। स्त्रियाँ शोक की उत्पत्ति का क्षेत्र है। स्त्रियाँ पुरुषों के बल को नाश करने वाली हैं और पुरुषों को वध करने के लिये वध्यशाला के समान हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्वानों ने कहा है कि स्त्रियाँ दर्शन मात्र से चित्त को हर लेती हैं और स्पर्श करने से बल को हरण करती हैं तथा सङ्ग करने से वीर्य्य का हरण करती हैं। अतः स्त्रियाँ प्रत्यक्ष ही राक्षसी हैं। स्त्रियाँ लज्जा का नाश कर देती हैं। स्त्रियाँ अविनय की राशि और कपट तथा पाखण्ड के घर हैं। स्त्रियों के कारण जगत में वैर होता हुआ देखा जाता है इसलिये स्त्रियाँ वैर की खान हैं। स्त्रियाँ शोक का तो शरीर ही हैं। स्त्रियों के कारण मनुष्य कुल की मर्य्यादा का नाश कर देता है। एवं स्त्री के कारण मनुष्य अपनी संयम मर्य्यादा का भी नाश कर देता है। स्त्रियाँ राग और द्वेष के आधार हैं इनके कारण ही मनुष्यों में राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। स्त्रियाँ दुश्चरित्र के घर हैं। इनके कारण मनुष्य का चरित्र भ्रष्ट होजाता है। ये साक्षात् कपट की राशि हैं। इनके साथ अधिक संसर्ग होने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ध्वंस हो जाता है। जो ब्रह्मचारी पुरुष इन स्त्रियों के साथ अधिक संसर्ग रखता है उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत अवश्य ही नष्ट होजाता है। अतः स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य्य को नष्ट करने वाली हैं। स्त्रियां श्रुत और चारित्र धर्म के विघ्न स्वरूप हैं। जो महापुरुष मोक्षमार्ग के पथिक हैं स्त्रियाँ उनके लिये तो महान् शत्रु हैं क्योंकि उनके चारित्र का नाश करने वाली हैं तथा उन्हें नरक आदि गतियों में गिराने वाली हैं। जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम आचारों से सम्पन्न हैं, उन्हें स्त्रियाँ कलङ्कित कर देती हैं। जैसे बगीचे में पुष्पों का पराग अधिक होता है उसी तरह स्त्रियों के संसर्ग से पुरुषों में कर्मरूपी पराग अधिक होता है। इसलिये स्त्रियाँ कर्म रूपी पराग के लिये बगीचे के समान हैं। जैसे अर्गला लगा देने से द्वार बन्द हो जाता है इसी तरह स्त्री में आसक्त होने से मोक्ष का द्वार बन्द हो जाता है। इसलिये स्त्रियाँ मोक्ष मार्ग के लिये अर्गला स्वरूप हैं। जैसे सर्प महान् क्रोधी होता है इसी तरह स्त्रियाँ भी अत्यन्त क्रोधिनी होती हैं। जैसे पागल हाथी अपने वश में नहीं होता है उसी तरह स्त्रियाँ काम के वशीभूत होती हैं। जैसे बाघिन का हृदय दुष्ट होता है, उसी तरह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्रियों का हृदय भी दुष्ट होता है। जैसे तृणों से ढका हुआ कूप अप्रकाश युक्त होता है उसी तरह माया से ढका हुआ इन का हृदय पुरुषों के द्वारा जाना नहीं जाता है। जैसे मृग को पकड़ने वाला व्याध अनेक कपटों का प्रयोग करके मृग को पकड़ लेता है उसी तरह विविध प्रकार के कपटों का प्रयोग करके स्त्रियाँ पुरुषों को फँसा लेती हैं। स्त्रियों का हृदय किसी भी प्रकार से जाना नहीं जा सकता है। जैसे कण्डे की अग्नि दाहक होती है उसी तरह स्त्रियाँ भी पुरुष के अन्तः करण को दुःखाग्नि द्वारा जलाने वाली होती हैं। जैसे पर्वत का विषम मार्ग समतल नहीं होता है उसी तरह इनका हृदय भी सम नहीं होता है किन्तु विषम यानी अत्यन्त चञ्चल होता है। जैसे भूतों से ग्रस्त पुरुष का आचरण चञ्चल होता है, कहीं भी वह ठहरता नहीं है। इसी तरह इन स्त्रियों का चित्त भी किसी एक वस्तु पर स्थिर नहीं रहता है। जैसे दुष्ट व्रण के अन्दर का प्रदेश दूषित होता है उसी तरह इनका भी हृदय दूषित होता है। कृष्ण सर्प के तुल्य ही स्त्रियाँ भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

स्त्रियाँ अपने कपट को छिपा कर रखती हैं जैसे महामारी अपनी मारकशक्ति को छिपाये रखती है। सन्ध्याकाल में जैसे थोड़ी देर तक मेघों में रक्त वर्ण उत्पन्न होता है, उसी तरह इनमें भी थोड़ी देर के लिये राग उत्पन्न होता। जैसे समुद्र की तरंगें स्वभावतः चञ्चल होती हैं इसी तरह स्त्रियों का चित्त भी स्वभावतः चञ्चल होता है। जैसे मछली को पीछे की ओर लौटाना सरल नहीं होता उसी तरह स्त्रियों को भी उनके हठ से निवृत्त करना सरल नहीं होता है। वानर के समान स्त्रियों का चित्त चञ्चल होता है। मृत्यु में और स्त्री में कोई भेद नहीं है। जैसे दुर्भिक्षकाल दया से शून्य होता है अथवा सर्प जैसे निर्दय होता है उसी तरह स्त्रियाँ भी निर्दय होती हैं। जैसे वरुणदेव अपने हाथ में पाश लिये रहता है, उसी तरह स्त्रियाँ पुरुषों को फँसाने के लिए सदा ही काम का पाश लिये रहती हैं। जल जिस तरह स्वभाव से ही नीचगामी होता है उसी तरह स्त्रियाँ भी नीचानुरागिणी होती हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसे दीन जन सदा ही द्रव्य के लाभ से हाथ पसारे रखते हैं उसी तरह स्त्रियाँ भी सदा ही लोभ वश हाथ पसारे रहती हैं। दुष्ट कर्म करने वाली स्त्रियाँ सदा ही नरकवत् भय उत्पन्न करती रहती हैं। विष्ठा भक्षण करने वाले गर्दभ के समान स्त्रियों का आचरण दुष्ट होता है। दुष्ट घोड़ा जैसे वश में नहीं किया जा सकता है उसी तरह स्त्रियाँ भी वश नहीं की जा सकती हैं। बालक की तरह इनका राग क्षणिक होता है। अन्धकार में प्रवेश करना जैसे कठिन होता है उसी तरह स्त्रियों के कपट पूर्ण व्यवहार को जानना कठिन होता है। विष की लता के समान ही स्त्रियाँ आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। दुष्ट ग्राह से सेवित बावड़ी जैसे प्रवेश के योग्य नहीं होती है उसी तरह स्त्रियाँ भी सेवन करने के योग्य नहीं हैं। अपने पद से भ्रष्ट ग्राम तथा नगर का स्वामी अथवा चारित्र से भ्रष्ट साधु अथवा उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाला आचार्य जैसे प्रशंसा के योग्य नहीं होता है उसी तरह स्त्रियाँ प्रशंसा के योग्य नहीं होती हैं। जैसे किंपाक वृक्ष का फल, खाते समय मधुर प्रतीत होता है परन्तु शीघ्र ही प्राण को हरण कर लेता है उसी तरह स्त्रियाँ विषय भोग करते समय मधुर प्रतीत होती हैं परन्तु परिणाम में दुःख उत्पन्न करती हैं।

जैसे खाली मुट्ठी को देख कर बालक को लोभ उत्पन्न होता है उसी तरह स्त्रियों को देख कर अज्ञानी जीव ही लुब्ध होते हैं। जैसे किसी पक्षी ने कहीं मांस का टुकड़ा पाया हो तो दूसरे दुष्ट पक्षी उस मांस खण्ड को ले लेने के लिये बहुत उपद्रव करते हैं उसी तरह सुन्दर स्त्री के कारण नाना प्रकार के उपद्रव हुआ करते हैं। जैसे मछलियों के लिये मांस का ग्रहण उपद्रव युक्त होता है उसी तरह स्त्रियों का ग्रहण उपद्रव युक्त होता है। जैसे जलती हुई तृण की पूली जलाने वाली होती है उसी तरह स्त्रियाँ स्वभाव से ही जलाने वाली होती हैं। घोर पाप जैसे उल्लङ्घन करने योग्य नहीं होता है किन्तु उसका फल दुःख भोग करना ही पड़ता है उसी तरह स्त्री में आसक्त पुरुष को स्त्री द्वारा उत्पादित दुःख भोग करना ही पड़ता है। जैसे नकली पैसा समय पर धोखा देता है उसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तरह स्त्रियाँ धोखा देती हैं। जैसे तीव्र क्रोधी को पास में रखना कठिन है उसी तरह स्त्रियों का रक्षण कठिन है। स्त्रियाँ दारुण विषाद के कारण हैं, अश्रद्धा अकार्य्य करने में स्त्रियों को जरा भी खेद नहीं होता है। कोई कोई अपने पति को विष देकर मार डालती हैं। जो पुरुष स्त्री में अनुरक्त होता है उसकी दूसरे विषयों में भी आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। स्त्री में अत्यन्त आसक्ति होने से जीव की छठी नरक भूमि तक गति होती है। स्त्रियों को जब अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिये विषय की प्राप्ति नहीं होती है तब उन्हें विषाद उत्पन्न होता है। कोई कोई स्त्रियाँ क्रोधित होकर स्वयं विषभक्षण कर लेती हैं। तीव्र पुण्य वाले मुनियों की दृष्टि में स्त्रियाँ यमराज की तरह प्रतीत होती हैं। मुनिजन स्त्रियों से घृणा करते हैं। स्त्रियों की सेवा कठिन होती है। इनमें गम्भीरता नहीं होती है। स्त्रियाँ विश्वास के योग्य नहीं होती हैं। स्त्रियाँ एक पुरुष में चित्त नहीं रखती हैं। युवावस्था में इनका रक्षण करना कठिन है। बाल्यावस्था में इनका पालन भी कठिन है। इस लोक और परलोक में स्त्रियाँ दुःख उत्पन्न करती हैं। स्त्रियों के कारण संसार में दारुण वैर की उत्पत्ति होती है। स्त्रियाँ रूप और सौभाग्य के गर्व से मत्त रहती हैं। सर्प की गति की तरह इनका हृदय कुटिल होता है। जहाँ व्याघ्र, सिंह और सर्प आदि हिंसक प्राणी निवास करते हैं ऐसे घोर जङ्गल में अकेले जाना और वहाँ निवास करना जैसे महान् भय को उत्पन्न करता है। उसी तरह स्त्रियों के साथ अकेले जाना या निवास करना दारुण भय का कारण होता है। स्त्रियाँ स्वजन तथा मित्रादि वर्ग में फूट उत्पन्न कर देती हैं। अन्य के दोष को झटपट प्रकट करती हैं। उपकार को नहीं मानती हैं। पुरुष के वीर्य्य का विनाश कर देती हैं। दुराचारिणी स्त्रियाँ जार पुरुष को विषय सेवन करने के लिये एकान्त में ले जाती हैं। जैसे जङ्गली सूअर किसी कन्द आदि भक्ष्य पदार्थ को पाकर उसे एकान्त में ले जाकर खाता है उसी तरह स्त्रियाँ भी एकान्त में पुरुषों का उपभोग करती हैं। इन स्त्रियों में अत्यन्त चञ्चलता होती है। जैसे अग्नि का पात्र अग्नि के संसर्ग से रक्त वर्ण होता है उसी तरह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्रियाँ वस्त्र और भूषण आदि के संयोग से राग उत्पन्न करने वाली यानी सुन्दरी प्रतीत होती हैं। स्त्रियाँ पुरुषों में परस्पर की मैत्री को विविध प्रकार से नष्ट कर देती हैं अथवा पुरुषों में ब्रह्मचर्य्य तथा चारित्र के प्रति जो राग होता है उसे अनेक प्रकार से नष्ट करती हैं। स्त्रियाँ बिना रस्सी का बन्धन हैं तथा वृक्ष आदि से शून्य घोर कान्तार यानी अटवीस्वरूप हैं अथवा काष्ठ रहित अटवी जैसे मृग-तृष्णा का कारण होती है उसी तरह स्त्रियां भ्रान्ति का कारण होती हैं अथवा जैसे काष्ठ रहित अटवी कभी जलती नहीं है उसी तरह स्त्रियाँ पाप करके पश्चात्ताप नहीं करती हैं। स्त्रियाँ पुरुष को अकर्तव्य करने में प्रवृत्त कर देती हैं। स्त्रियां अदृश्य यानी जो देखने में नहीं आती है ऐसी वैतरणी नदी हैं। स्त्रियाँ असाध्य रोग के समान पीड़ा देने वाली हैं। स्त्रियाँ माता पिता आदि के वियोग हुए बिना ही रुदन के समान हैं। स्त्रियाँ रूप रहित उपसर्ग हैं। स्त्रियाँ काम भोग में सुख बुद्धि उत्पन्न करती हैं जो वस्तुतः भ्रान्ति है। स्त्रियाँ समस्त शरीर को जलाने वाली दाहनामक व्याधि हैं। स्त्रियाँ बिना मेघ के वज्रपात हैं। स्त्रियाँ चाहे विवाहित हों या अविवाहित हों, अलङ्कृत हों या अलङ्कार रहित हों, मुण्डित हों या अमुण्डित हों, किसी भी अवस्था में हों, मोक्ष की इच्छा करने वाले ब्रह्मचारी मुनियों को सदा वर्जित करने योग्य हैं। स्त्रियाँ जलशून्य प्रवाह हैं। अतएव कामी जन बिना ही जल के इन में डूब मरते हैं। जैसे समुद्र के वेग को कोई भी सहन नहीं कर सकता, इसी तरह इनके उपद्रव को भी कोई सहन नहीं कर सकता है। स्त्रियाँ परमस्नेहियों को भी जुदा करा देती हैं।

अवि याइं तासिं इत्थियाणं अणेगाणि नामनिरुत्ताणि पुरिसे कामरागपडिबद्धे णाणाविहेहिं उवायसयसहस्सेहिं वह बंधणमाणयंति, पुरिसाणं नो अण्णो एरिसो अरी अत्थित्ति णारीओ, तंजहा णारीसमा न णराणं अरीओ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णारीओ, णाणाविहेहिं कम्मेहिं सिप्पियाईहिं पुरिसे मोहंतित्ति महिलाओ, पुरिसे मत्ते करंतित्ति पमयाओ, महंतं कलिं जणयंतित्ति महिलियाओ, पुरिसे हावभावमाईहिं रमंतित्ति रामाओ, पुरिसे अंगाणुराए करंतित्ति अंगणाओ, णाणाविहेसु जुद्धभंडण संगामाडवीसु मुहाण गिण्हणसीउण्ह दुक्खकिलेसमाईएसु पुरिसे लालंतित्ति ललणाओ, पुरिसे जोगणिओएहिं वसे ठावंतित्ति जोसियाओ, पुरिसे णाणाविहेहिं भावेहिं वण्णंतित्ति वणियाओ, काई पमत्तभावं, काई पणयं सविब्भमं, काई ससद्दं सासिव्व ववहरंति, काई सत्तुव्व, रो रो इव काई पयएसु पणमंति, काई उवणएसु उवणमंति, काई कोउयणमंति, काई सुकडक्खणिरिक्खएहिं सविलासमहुरेहिं उवहसिएहिं उवग्गहिएहिं उवसद्देहिं गुरुगदरिसणेहिं भूमिलिहण विलिहणेहिं य आरुहण णत्तणेहिं य बालय उवगूहणेहिं य अंगुलिफोडणथणपोलणकडितड-जायणाहिं तज्जणाहिं य अवि याइं ताओ पासो व ववसिउं, जे पंकुव्व खुप्पिउं, जे मच्चु व्व मरिउं, जे अगणिव्व डहिउं, जे असिव्व छिज्जिउं जे ॥ सूत्रं १६ ॥

छाया—अपि च तासां स्त्रीणां अनेकानि नामनिरुक्तानि, पुरुषं कामराग प्रतिबद्धं नानाविधैरुपायसहस्रैः वध बन्धनमानयन्ति, पुरुषाणां नान्य ईदृशोऽरिरस्तीति नार्य्यः । नारी समाः न नराणां मदयः सन्तीति नार्य्यः । नानाविधैः कर्मभिः शिल्पकादिभिश्च पुरुषान् मोहयन्तीति महिलाः । पुरुषान् मत्तान् कुर्वन्तीति प्रमदाः । महान्तं कलिं जनयन्तीति महिलिकाः । पुरुषान् हावभावादिभी रमयन्तीति रामाः । पुरुषान् अङ्गानुरागान् कुर्वन्तीति अङ्गनाः । नानाविधेषु युद्धभण्डनसंग्रामाटवीष मुधार्णग्रहणशीतोष्णदुःखक्लेशादिषु पुरुषान् लालयन्तीति ललनाः । पुरुषान् योगनियोगैः वशे स्थापयन्तीति योषितः । पुरुषान् नानाविधैर्भावैः वर्णयन्तीति वनिताः । काश्चित् प्रमत्तभावं, काश्चित् प्रणतं सविभ्रमं, काश्चित् सशब्दं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वासीव व्यवहरन्ति। काश्चित् शत्रुरिव, रोर इव काश्चित् पादयोः प्रणमन्ति, काश्चित् उपनतेषु नमन्ति, काश्चित् कौतुकं नमन्ति, काश्चित् सुकटाक्षनिरीक्षितैः सविलासमधुरैः उपहसितैः उपयूहीतैः उपशब्दैः गुरुकदर्शनैः भूमिलेखनविलखनैश्च आरोहणनर्तनैश्च बालकोपगूहनैश्च अङ्गुलिस्फोटनस्तनपीडन कटितटयातनाभिः तर्जनाभिश्च, अपि च ताः पाशवत् व्यवसितुं, याः पङ्कवत् क्षेप्तुं, याः मृत्युरिव मारितुं, याः अग्निरिव दग्धु मसिरिवच्छेत्तुं याः ॥ १७ ॥

भावार्थः—जिनका स्वरूप पहले कहा गया है और आगे भी कहा जाने वाला है उन स्त्रियों में जो अत्यन्त अधम दासी और दुराचारिणी स्त्रियाँ हैं उनके नामों की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है। अधम स्त्रियाँ पुरुषों को, जो उनमें आसक्त हैं, हजारों उपायों द्वारा वध और बन्धन का भाजन बनाती हैं, इसलिये उनके बराबर पुरुषों का दूसरा शत्रु न होने से वे 'नारी' कहलाती हैं। पुरुषों का स्त्रियों के तुल्य दूसरा शत्रु नहीं है इसलिये वे नारी कहलाती है। स्त्रियाँ विविध प्रकार के कर्म तथा शिल्प के द्वारा पुरुषों को मोहित कर लेती हैं इसलिये उन्हें 'महिला' कहते है। स्त्रियाँ पुरुष को पागल की तरह बना देती हैं इसलिये वे 'प्रमदा' कहलाती है। स्त्रियाँ महान् कलह उत्पन्न करती हैं इसलिये वे' महिलिका' कही जाती हैं। वे हाव भाव आदि लीलाओं द्वारा पुरुषों को रमण कराती हैं इसलिये 'रामा' कही जाती हैं। वे अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों में पुरुषों को आसक्त करती हैं इसलिये 'अङ्गना' कही जाती हैं। पुरुषगण स्त्रियों के कारण परस्पर मार पीट करते हैं, गालागाली करते हैं, परस्पर शस्त्र का प्रहार करते हैं, घोर जङ्गलों में भ्रमण करते हैं, बिना प्रयोजन ऋण लेते हैं, सर्दी और गर्मी का कष्ट सहन करते हैं। इसी तरह वे अनेक प्रकार के क्लेशों का अनुभव करते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों को उक्त कार्यों में प्रवृत्त करती हैं इसलिये वे 'ललना' कहलाती हैं। ललनाएँ कामातुर करके पुरुष को अपने वश में कर लेती हैं। वे अपने वचन, शरीर, हास्य और अङ्गविक्षेप आदि द्वारा तथा मन में कामविकार उत्पादन द्वारा पुरुषों को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपने वश में कर लेती हैं एवं कितनी ही स्त्रियाँ वशीकरण विद्या द्वारा पुरुषों को अपने अधीन कर लेती हैं इसलिये वे 'योषित्' कहलाती हैं। वे अनेक प्रकार की चेष्टाओं द्वारा पुरुषों के मन में कामाग्नि को प्रदीप्त करती हैं इसलिये 'वनिता' कहलाती हैं। कोई स्त्री पुरुषों के पतन के लिये उन्मत्त की तरह व्यवहार करती है। कोई पुरुषों को अपने पाश में फँसाने के लिये विलास के साथ प्रवृत्ति करती है और कामीजन को झुका लेती है। कोई शब्द पूर्वक श्वासरोगी की तरह अपनी चेष्टा दिखलाती हैं और इसके द्वारा पुरुषों को स्नेहयुक्त करना चाहती है। कोई अपने पति को भयभीत करने के लिये शत्रु की तरह प्रवृत्ति करती हैं। जैसे दरिद्र पुरुष दूसरे के पैरों पर पड़ता है उसी तरह कोई स्त्री कामातुर होकर पुरुषों के पैरों में गिर जाती है। कोई हास्य उत्पन्न करने के लिए वाणी और नेत्र को विकृत करती है। कोई कटाक्ष द्वारा अवलोकन करती हुई मूर्खों को पतित करती है। कोई विलास के साथ मधुर वचन बोल कर पुरुषों को मोहित करती है। कोई हास्यजनक चेष्टा द्वारा पुरुषों को हास्य उत्पन्न करती है। कोई आलिङ्गन और लिङ्गग्रहण द्वारा पुरुष में अपना प्रेम दिखलाती है। कोई सुरतकाल में अत्यन्त मधुरध्वनि करती हुई कामियों के कामराग की वृद्धि करती है। कोई स्त्री अपने मोटे स्तन और विशाल नितम्ब आदि दिखा कर दूर रहने वाले पुरुष को भी वश में कर लेती है। स्त्रियाँ अपने गुरु जन को भी धोखा देकर अकर्तव्य में प्रवृत्त कर देती हैं। वे रुदन द्वारा पुरुष में स्नेह उत्पन्न करती हैं तथा अपने पिता के घर में जाने के अवसर पर पुरुष का राग अत्यन्त बढ़ाती हैं। वे अपने दाँतों को दिखा कर पुरुषों को वशीभूत कर लेती हैं। वे रतिकलह द्वारा पुरुषों को रमण कराती हैं। वे शृङ्गार प्रधान गीत गाकर साधुओं को भी वश में कर लेती हैं। वे कज्जल, विकार तथा सजल नेत्रों द्वारा कामी पुरुष को मोहित कर लेती हैं। वह मोहित पुरुष उन स्त्रियों की गुलामी करने लगता है और इसके लिये अपराध का पात्र भी बनता है। स्त्रियाँ पैरों द्वारा पृथ्वी पर अक्षर लिखती हैं और स्वस्तिक आदि चिन्ह बनाती हैं। उनके द्वारा वे पुरुषों को अपने गोपनीय विषयों की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूचना करती हैं। कोई बाँस पर चढ़ कर नाचती हैं, कोई पृथ्वी पर नृत्य करती हैं और इनके द्वारा पुरुषों में आश्चर्य उत्पन्न करती हैं। बिगड़ी हुई स्त्रियाँ गुप्त रूप से कामियों के साथ दोस्ती करके अपनी कामपिपासा को शान्त करती हैं। अथवा वे अपने केशों को विभूषित करके तथा स्वच्छ वस्त्रों को पहिन करके काम के गुलाम अधम पुरुषों को वश में करके उनके द्वारा बैल की तरह अपना कार्य्य कराती हैं तथा बन्दर की तरह कामियों को नचाती हैं। कोई कोई स्त्रियाँ स्वार्थ की पूर्त्ति न होने पर अपने प्राणों का भी त्याग कर देती हैं। स्त्रियाँ अपने अङ्ग और अङ्गुलियों का स्फोटन तथा स्तनों का पीड़न एवं नितम्ब का पीड़न, अपने हाथों से अथवा वक्रगति के द्वारा करती हैं और इनके द्वारा कामियों के चित्त को कम्पित करती हैं। कोई अपनी अङ्गुलियों को, मस्तक को तथा तृण आदि को चञ्चल करती हुई उनके द्वारा पुरुषों में काम पीड़ा उत्पन्न करती हैं। कोई वस्त्र भूषण आदि के द्वारा उज्ज्वल वेष बना कर तथा भूषणों का शब्द उत्पन्न करके एवं मार्ग में विलास के साथ गमन द्वारा तथा दूसरे भी विविध उपायों द्वारा पुरुषों को आकर्षित कर लेती हैं। इसलिये संयमचारियों को इनका सङ्ग सर्वथा त्याग देना चाहिये। इस संसार में बहुत बिगड़ी हुई स्त्रियाँ हैं, जो पुरुषों को नागपाश की तरह बन्धन में डालने के लिए प्रवृत्ति करती हैं। वे इस भव में तथा परभव में पुरुषों के बन्धन का कारण बनती हैं। एवं पुरुषों को घोर कीचड में फँसा देती हैं। स्वच्छन्द आचरण करने वाली स्त्रियाँ मृत्यु की तरह अपने पति को मार डालने का प्रयत्न करती हैं। वेश्याएं अग्नि की तरह कामियों को जला देती हैं। युवती परिव्राजिकाएं भी कई ऐसी होती हैं जो कपट करने में बड़ी निपुण होती हैं और तलवार के समान साधुओं को छिन्न भिन्न करने में प्रवृत्त रहती हैं।

असिमसि सारच्छीयं, कंतारकवाडचारय समाणं। घोर निउरंबकंदुरचलंत बीभच्छ भावाणं ॥ १२२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—असिसषिसदृशाणां, कान्तारकपाट चारकसमानाम् । घोरनिकुरम्बकन्दर चलद् बीभत्स भावनां ॥ १२२ ॥

भावार्थः—स्त्रियाँ तलवार के समान तीक्ष्ण और कज्जल के समान मलिन होती हैं! जैसे तलवार निर्दयता के साथ मनुष्यों को छेदन करती है, इसी तरह स्त्रियाँ मनुष्यों के लिए इस लोक तथा परलोक में दारुण दुःख उत्पन्न करती हैं। जैसे कज्जल श्वेत वस्तु को काला कर देता है, उसी तरह स्त्रियाँ कुलीन सदाचारी पुरुषों को कलङ्कित कर देती हैं। स्त्रियाँ गहन वन, कपाट तथा कारागृह के तुल्य होती हैं। जैसे गहन वन व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों का आश्रय होने से भयदायक होता है, उसी तरह स्त्रियाँ पुरुषों के धन जीवन आदि के विनाश के कारण होने से भयदायक होती हैं। जैसे किसी मकान या गली का फाटक बन्द कर देने से उसके भीतर कोई प्रवेश नहीं कर सकता है। इसी तरह स्त्रियाँ धर्म रूपी मार्ग को बन्द कर देती हैं। अतः स्त्री में आसक्त पुरुषों का धर्म मार्ग में प्रवेश करना अशक्य है। जैसे कारागृह (जेल) में रहने वाले दुःख भोगते हैं। उसी तरह स्त्रियों में आसक्त जीव दुःख भोगते हैं। इसलिये स्त्रियाँ पुरुषों के लिए कारागृह के तुल्य हैं। स्त्रियों के हृदय का भाव कपट से परिपूर्ण होता है। वह इस प्रकार भयदायक है जैसे अगाधजल चलता हुआ भयङ्कर होता है। अतः बुद्धिमानों को इनका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १२३ ॥

दोस सयगागरीणं, अजससय विसप्पमाण हिययाणं । कइयव पण्णत्तीणं, तासं अण्णायसीलाणं ॥ १२३ ॥

छाया—दोषशत गर्गरिकाणां, अयशः शतविसर्पद्हृदयाणाम् । कैतव प्रज्ञप्तीना, तासा मज्ञातशीलानाम् ॥ १२३ ॥

भावार्थ—स्त्रियाँ सैकड़ों प्रकार के दोषों का घड़ा हैं। इनके हृदय में सैकड़ों बुराइयाँ चलती रहती हैं। इनका विचार कपट से पूर्ण होता है और बड़े बड़े विद्वान् भी इनके स्वभाव को नहीं जान सकते हैं ॥ १२३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अण्णं रयंति अण्णं रमंति, अण्णस्स दिंति उल्लावं । अण्णो कडअंतरिओ, अण्णो पयडंतरे ठविओ ॥ १२४ ॥

छाया—अन्यं रजयन्ति अन्यं रमयन्ति, अन्यस्य ददत्युल्लापं । अन्यः कटान्तरितः, अन्यः पटकान्तरे स्थापितः ॥ १२४ ॥

भावार्थ—कई स्त्रियाँ दो तीन या इससे भी अधिक पुरुषों के साथ प्रेम रखती हैं, एक को प्रेम के साथ देख कर काम उत्पन्न करती हैं और अन्य के साथ क्रीड़ा करती हैं एवं तीसरे के साथ वार्तालाप करती हैं एवं किसी को चटाई के पर्दे के अन्दर छिपा कर रखती हैं और किसी को कपड़े के पर्दे के अन्दर छिपा देती हैं। उनके दुराचार का ज्ञान जब होजाता है तब जानने वाले पति आदि को विष देकर मार डालती हैं। वे अपने भाव को समझाने के लिये अपने जार के सम्मुख पृथ्वी पर कुछ लिखती हैं अथवा तृण उखाड़ती हैं ॥ १२४ ॥

गंगाए वालुयाए, सायरे जलं हिमवओ य परिमाणं । उग्गस्स तवस्स गइं, गब्भुप्पत्तिं य विलयाए ॥ १२५ ॥
सीहे कुडंबुयारस्स, पुट्ठलं कुक्कुहाईयं अस्से । जाणंति बुद्धिमंता, महिला हिययं ण जाणंति ॥ १२५ ॥

छाया—गङ्गायां वालुकां, सागरे जलं हिमवतः परिमाणम् । उग्रस्य तपसः गतिं, गर्भोत्पत्तिञ्च वनितायाः ॥ १२६ ॥
सिंहे कुण्डबुकारं, पुट्टलं कुक्कुहादिकमश्वे । जानन्ति बुद्धिमन्त, महिलाहृदयं न जानन्ति ॥ १२६ ॥

भावार्थ—गङ्गा नदी की बालुका को, समुद्र के जल को एवं हिमवान् पर्वत के परिमाण को बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं, तथा तीव्र तपस्या का फल, स्त्री के गर्भ का बालक, सिंह के पीठ का बाल, अपने पेट के पदार्थ तथा गमन के समय अश्व का शब्द, इनको भी बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं परन्तु स्त्री के अन्तःकरण को नहीं जान सकते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एरिस गुणजुत्ताणं, ताणं कइयव्वसंठियमणाणं । ण हु मे वीससियव्वं, महिलाणं जीवलोगम्मि ॥ १२७ ॥

छाया—ईदृशगुणयुक्तानां, तासां कपिवदस्थितमनसाम् । न हि भवद्भिर्विश्वासितव्यं, महिलानां जीवलोके ॥ १२७ ॥

भावार्थ—ऐसे गुणों वाली स्त्रियाँ होती हैं। उनका मन वानर की तरह चञ्चल होता है। इसलिये इस जीवलोक में आप लोगों को स्त्रियों का विश्वास कदापि नहीं करना चाहिये ॥ १२७ ॥

निद्धण्णयं य खलयं, पुप्फेहिं विवज्जियं व आरामं । निद्दुद्धियं य धेणुं, लोएवि अतिल्लियं पिंडं ॥ १२८ ॥

छाया—निर्धान्यकञ्च खलकं, पुष्पैर्विवर्जितञ्चारामम् । निर्दुग्धिका च धेनुः, लोकेऽपि अतैलकं पिण्डम् ॥ १२८ ॥

भावार्थ—जैसे बिना अन्न का खल यानी अन्न के शोधन का स्थान एवं बिना पुष्प के बगीचा और बिना दूध की गाय तथा बिना तेल का पिण्ड शोभनीय नहीं होता है, इसी तरह स्त्रियाँ भी सुखहीन होने से अशोभनीय होती हैं ॥ १२८ ॥

जेणंतरेणं निमिसंति, लोयणा तक्खणं य विगसंति । तेणंतरे वि हियय, चित्त सहस्साउलं होई ॥ १२९ ॥

छाया—येनान्तरेण निमिषन्ति, लोचनानि तत्क्षणञ्च विकसन्ति । तेनान्तरेण हृदयं, चित्तसहस्राकुलं भवति ॥ १२९ ॥

भावार्थ—जो प्रियतम स्त्रियों का स्वार्थ प्राणपण से पूरा करता है उसके बिना उसके प्रफुल्लित नेत्र सङ्कुचित होजाते हैं परन्तु जब वह उनका स्वार्थ सम्पादन नहीं करता है तब उसके बिना उसके नेत्र प्रफुल्लित होजाते हैं। जो स्त्रियाँ कुशीला होती हैं उनका चित्त अपने पति में कभी नहीं रहता है किन्तु हजारों अन्य पुरुषों में घूमता रहता है ॥ १२९ ॥

जड्डाणं वड्डाणं, निव्विन्नाणाणं निव्विसेसाणं । संसार सूयराणं, कहियंपि निरत्थयं होइ ॥ १३० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छाया—जडानां वृद्धानां, निर्विज्ञानानां निर्विशेषाणाम् । संसारशूकराणां, कथितमपि निरर्थकं भवति ॥ १३० ॥

भावार्थ—जो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से मूर्ख हैं, जो अत्यन्त वृद्ध हैं, जो विशिष्ट ज्ञान से हीन हैं, जो विशेष (भेद) को नहीं जानते हैं, ऐसे जो लोग सांसारिक विषयों में शूकर की तरह आसक्त हैं उनके प्रति अच्छी शिक्षा देना निरर्थक होजाता है ॥ १३० ॥

किं पुत्तेहिं पियाहिं वा, अत्थेणवि पिंडएण बहुएणं । जो मरणदेसकाले, न होइ आलंबणं किंचि ॥ १३१ ॥

छाया—किं पुत्रैः पितृभिर्वा, अर्थेनाऽपि पिण्डितेन बहुकेन । यद् मरण देशकाले, न भवत्यालम्बनं किञ्चित ॥ १३१ ॥

भावार्थ—पुत्र, पिता अथवा बहुत संग्रह किये हुए धन से ही क्या लाभ है ? जो मरण समय उपस्थित होने पर कोई भी सहायक नहीं होता है ॥ १३१ ॥

पुत्ता चयंति मित्ता चयंति, भज्जा वि णं मयं चयइ । तं मरणदेसकाले, न चयइ सुविअज्जिओ धम्मो ॥ १३२ ॥

छाया—पुत्रास्त्यजन्ति मित्राणि त्यजन्ति, भार्यापि मृतं त्यजति । तस्मिन् मरणदेशकाले, न त्यजति सुव्यर्जितो धर्मः ॥ १३२ ॥

भावार्थ—जब मरणकाल आजाता है तब प्राणी को पुत्र, मित्र और स्त्री सभी छोड़ देते हैं, एक धर्म ही ऐसा है जो भली भाँति आचरण किया हुआ नहीं छोड़ता है ।

धम्मो ताणं धम्मो सरणं, धम्मो गई पइट्ठा य । धम्मेण सुचरिएण य, गम्मइ अयरामरं ठाणं ॥ १३३ ॥

छाया—धर्मस्त्राणं धर्मः शरणं, धर्मो गतिःप्रतिष्ठा च । धर्मेण सुचरितेन च, गम्यतेऽजरामरं स्थानम् ॥ १३३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ—धर्म ही अनर्थ का नाशक और अर्थ का सम्पादक है। धर्म ही रक्षक है, धर्म ही गति और आधार है। धर्म का भली-भाँति आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ १३३ ॥

पीइकरो वण्णकरो, भासकरो जसकरो य अभयकरो। निव्वुइकरो य सययं, पारित्त बिइज्जओ धम्मो ॥ १३४ ॥

छाया—प्रीतिकरो वर्णकरो, भाकरो (भाषाकरो) यशस्करश्चाभयकरः। निर्वृतिकरश्च सततं, परत्र द्वितीयो धर्मः ॥ १३४ ॥

भावार्थ—धर्म प्रीति को उत्पन्न करता है, एक दिशा में फैलने वाली कीर्ति उत्पन्न करता है अथवा शरीर में उत्तम वर्ण उत्पन्न करता है, कान्ति उत्पन्न करता है, वचन की पटुता तथा मधुरता आदि गुणों को उत्पन्न करता है, समस्त दिशाओं में फैलने वाली कीर्ति उत्पन्न करता है, निर्भयता एवं कर्मक्षय रूप परमानन्द को उत्पन्न करता है तथा मनुष्यों को परलोक में सदा सहायता करता है ॥१३४ ॥

अमरवरेसु अणोवमरूवं, भोगोवभोगरिद्धी य। विण्णाणकाणमेव य, लब्भइ सुकएण धम्मेण ॥ १३५ ॥

छाया—अमरवरेषु अनुपमरूपं, भोगोपभोगऋद्धीश्च। विज्ञानज्ञानमेव च, लभ्यते सुकृतेन धर्मेण ॥ १३५ ॥

भावार्थ—विधिपूर्वक धर्माचरण करने से मनुष्य महान् ऋद्धि वाले देवताओं में जाकर सुन्दर रूप तथा भोग, उपभोग, ऋद्धि और ज्ञान विज्ञान का लाभ करता है

देविंदचक्कवट्टित्तणाइ, रज्जाइं इच्छिया भोगा। एयाइं धम्मलाभा, फलाइं जं चावि निव्वाणं ॥ १३६ ॥

छाया—देवेन्द्रचक्रवर्तित्वानि, राज्यानि ईप्सिता भोगाः। एतानि धर्मलाभात्, फलानि यच्चापि निर्वाणम् ॥ १३६ ॥

भावार्थ—देवेन्द्र पद, चक्रवर्त्ती पद, राज्य, ईप्सित भोग, ये सब धर्माचरण के फल हैं तथा निर्वाण भी इसी का फल है ॥ १३६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आहारो उच्छासो, संधि सिराओ य रोमकूवाइं । पित्तं रुहिरं सुक्कं, गणियं गणियप्पहाणेहिं ॥ १३७ ॥

छाया—आहार उच्छ्वासः सन्धिः, शिराश्च रोमकूपाः । पित्तं रुधिरं शुक्रं, गणितं गणितप्रधानैः ॥ १३७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्य सौ वर्ष की आयु पाकर कितना अन्न खाता है तथा कितने श्वास लेता है और इसके शरीर में कितनी सन्धियाँ, कितनी नसें, कितने रोम कूप, तथा कितने पित्त, रक्त, और शुक्र होते हैं यह गणित करके पहले बता दिया गया है ॥१३७॥

एयं सोउं सरीरस्स, वासाणं गणियप्पागडमहत्थं । मुक्खपउमस्स ईहह, समत्तसहस्स पत्तस्स ॥ १३८ ॥

छाया—एतत् श्रुत्वा शरीरस्य, वर्षाणां गणित प्रकट महार्थम । मोक्षपद्मस्य ईहध्वं, सम्यक्त्वसहस्र पत्रस्य ॥ १३८ ॥

भावार्थ—गणित के हिसाब से जिसका कार्य प्रकट कर दिया है ऐसे शरीर की आयु के वर्षों को सुन कर मोक्षरूपी कमल पुष्प के लिये प्रयत्न करना चाहिये। उस मोक्षरूपी कमल के सम्यक्त्व ही सहस्र पत्ते हैं ॥ १३८ ॥

एयं सगड सरीरं, जाइ जरा मरण वेयणा बहुलं । तह घत्तह कांउं, जे जह मुच्चह सव्वदुक्खाणं ॥ १३९ ॥

छाया—एतत् शकटशरीरं, जातिजरामरणवेदना बहुलं । तथा गृहणीत कार्यं, यदथा मुञ्चत सर्वदुःखेभ्य ॥ १३९ ॥

भावार्थ—यह शरीर जन्म, जरा, मरण और वेदनाओं से भरा हुआ एक प्रकार का शकट (गाडी) है। इस को पाकर ऐसा कार्य करो जिससे समस्त दुःखों से मुक्ति मिले ॥ १३९ ॥

इति 'तन्दुलवेयालियं' समत्तं ।

श्री रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, नसीराबाद रोड अजमेर ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुस्तक मिलने का पताः—

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था,

रांगड़ी चौक, बीकानेर (राजपूताना)

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था,

ठठारों की गवाड़, बीकानेर (राजपूताना)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. वृत्तबोध (संस्कृत छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थ)	मूल्य ≡)
२. जैनागम तत्त्वदीपिका (प्रश्नोत्तर के ढंग से जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ)	।≡)
३. श्रीलाल नाममाला (प्रारम्भिक संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए जैन पद्धति से रचा हुआ संस्कृत कोष)	।)
४. आलोयणा (विस्तार सहित)	(अप्राप्य)
५. श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० का जीवन चरित्र प्रथम भाग	४)
६. जवाहर विचार सार (श्रीमज्जवाहराचार्य के जीवन चरित्र का दूसरा भाग)	२)
७. तन्दुल वयालीय पइण्णा (गर्भ विषयक विचार का विस्तृत वर्णन)	१।।)
८. श्री जिन जन्माभिषेक (तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म कल्याणक का विस्तृत वर्णन)	(छप रहा है)

प्राप्तिस्थान

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था,
रांगड़ी चौक, बीकानेर

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only